कार्ल मार्क्स और उनके सिद्धान्त

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस लि०,
बम्बई ४.

सूची

मुद्रक : श्री राधेमोहन मेहरा, साधना प्रेस, चंगिया मनोराम, कानपुर (यू० पी०)

प्रकाशक : जयन्त भट, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस लि.,

खेतवाडी मेन रोड, बम्बई ४

लड़ता रहा। उसने एकके बाद दूसरे सेन्सरको बेकार साबित कर दिया, यहाँ तक कि उसपर दोहरे सेन्सर लगाये गये। एक बार सेन्सर किये जानेके बाद बड़ा सेन्सर (रेगीरुंग्स प्रासीडेण्ट) उसे फिर देखता-भालता था। लेकिन यह भी कारगर न हुआ। १८४३ के आरम्भमें सरकारने कहा कि इस अखबारको काबूमें रखना असम्भव है, इसलिये उसने और ज्यादा तूल-तवील किये बिना उसे बन्द कर दिया।

इसी बीच मार्क्सने फॉन वेस्टफालेनकी बहनसे शादी कर ली थी। वेस्टफालेन आगे चलकर जर्मन सरकारका प्रतिक्रियावादी मंत्री बना। मार्क्स पेरिस आये और वहाँ पर ए. रूगेके साथ जर्मन् फ्रान्सीसी महाग्रन्थ (दोईत्शे फ्रान्सोसिशे यार ब्यूखेर) प्रकाशित किया, जिसमें उन्होंने अपनी समाजवादी कृतियोंका श्रीगणेश किया। सबसे पहले उन्होंने "हीगेलके न्यायदर्शनका समालोचना" (क्रिटाक देर हेगेल्शेन रेख्ट्स फिलोसोफी) शुरू की। इसके बाद एंगेल्सके साथ "पवित्र परिवार" और "ब्रूनो बॉयर और उनके सहयोगियोंका विरोध" नामकी रचनाओंमें उस समयके आदर्शवादी जर्मन दर्शनके नवीनतम रूपोंकी व्यंग्यात्मक समालोचना की।

अर्थशास्त्र और महान् फ्रान्सीसी राज्य-क्रान्तिके इतिहासके अध्ययनके साथ-साथ मार्क्स प्रुशियन सरकारपर भी जब-तब वार करते रहते। प्रुशियन सरकारने, १८४५ में, गीजोके मंत्रिमंडल द्वारा उन्हें फ्रान्ससे निकलवाकर बदला चुकाया। कहा जाता है कि अलेग्जेण्डर फॉन हम्बोल्टने बिचवानीका काम किया था। मार्क्सने ब्रुसेल्समें डेरा डाला और वहाँ १८४७ में फ्रेंचमें, "दर्शन शास्त्रकी निर्धनता" (मिज़ेर द'ला फिलोसोफी) प्रकाशित की। यह पुस्तक प्रूधोकी रचना "निर्धनताका दर्शन" (फिलोसोफी द'ला मिज़ेर) की आलोचना है। १८४८ में "अनियंत्रित व्यापारकी विवेचना" (दिकूर सूर ल'लीब्र एक्सचेंज) प्रकाशित की। इसी समय, अवसरसे लाभ उठाकर, उन्होंने ब्रुसेल्समें जर्मन मजदूरोंका एक संघ भी बना डाला और इस तरह प्रयत्न आन्दोलन आरम्भ कर दिया। यह काम और भी महत्वका हो गया जब वह और उनके राजनीतिक साथी १८४७ में गुप्त "कम्युनिस्ट लीग" में आ गये। यह लीग कुछ साल पहलेसे चल रही थी लेकिन अब उसका

मज़दूरोंके हथियारबन्द जत्थे बनाये जा रहे थे। उद्देश्य यह था कि ये जर्मनीमें जाकर वहाँ क्रान्ति करेंगे और प्रजातन्त्र स्थापित करेंगे। एक ओर जर्मनीको अपनी क्रान्ति स्वयं ही करनी थी; दूसरी ओर अस्थायी सरकारके लामार्तीन पहलेसे ही जर्मन सरकारको हर क्रान्तिकारी जत्थेका भेद बता देते थे। यही बात बेल्जियम और बाडेनमें भी हुई थी।

मार्चकी क्रान्तिके बाद मार्क्स कोलोन चले गये और वहाँ उन्होंने "नोय राइनिशे त्साइटुङ्" की नींव डाली। यह पत्र १ जून १८४८ से १६ मई १८४६ तक चलता रहा। यह एक ऐसा पत्र था जो उस समयके जनवादी आन्दोलनमें सर्वहारा दृष्टिकोणको सामने रखता था। जून १८४६ के पेरिस-विद्रोहका उसने खुला समर्थन किया जिससे पत्रके प्रायः सभी साझेदार उससे अलग हो गये। "क्रायत्साइटुङ्" नामक पत्रने मार्क्सके इस पत्र पर "हिमालय जैसी धृष्टता" का दोष लगाया और कहा कि वह सम्राट और सम्राटके प्रतिनिधि (राइस वेज़र) से लेकर पुलिसके सिपाही तक सभी पवित्र वस्तुओंकी ख़बर लेता है और वह भी ऐसे नगरमें जहाँ ८,००० जर्मन सिपाही मौजूद हैं। किन्तु उसका विरोध व्यर्थ ही रहा। उदारमतवाले जर्मन "देशभक्त" अचानक प्रतिक्रियावादी बन गये थे, पर उनका यह सारा जोश-ख़रोश और गुस्सा भी व्यर्थ था। १८४८ की शरद्में एक लम्बे अर्सेके लिये यह पत्र फौजी कानूनसे बन्द कर दिया गया। परन्तु यह भी व्यर्थ रहा। फ्रैंकफोर्टके न्यायमंत्री कोलोनके पब्लिक प्रोसीक्यूटर (सरकारी वकील) के आगे हर लेखको गालियाँ देते कि पत्र पर कानूनी कार्रवाई की जाय। फौजी रक्षकोंकी आँखोंके सामने पत्र सम्पादित और मुद्रित होता रहा। सरकार और पूँजीपतियों पर उसके आक्षेपोंकी तीव्रताके साथ उसका नाम भी होता गया। नवम्बर १८४८ में जब जर्मन शासन-तन्त्रमें बलपूर्वक परिवर्तन किया गया, तो "नोय राइनिशे त्साइटुङ्" हर अंकके मुखपृष्ठ पर जनतासे अपील करता कि टैक्स मत दो और हिंसाका मुकाबला हिंसासे करो। १८४६ के वसन्तमें इस, और एक दूसरे, लेखके कारण जूरीके सामने उस पर मुकदमा चला, लेकिन वह दोनों बार छोड़ दिया गया। अन्तमें १८४६ में जब ड्रेस्डन और राइन प्रान्तोंमें मई-विद्रोह

[illegible] लोगोंके लिए जर्मन [illegible] था, [illegible] हम [illegible] तथा [illegible]।

[illegible] ([illegible] — [illegible]) [illegible] और [illegible]।

[illegible] "[illegible]" [illegible]। [illegible] "[illegible]" [illegible] उन्होंने "[illegible]" [illegible] प्रारम्भ हुई [illegible]।

[illegible] तथा [illegible] मार्क्स [illegible]। [illegible] स्मृति-चर्म [illegible] करते रहे। [illegible]। [illegible] प्रारम्भ [illegible] था। इनके कारण और [illegible]। [illegible] पर उन्होंने [illegible] प्रकाशित हुए।

[illegible] प्रथम [illegible] १८५९ में [illegible] प्रकाशित हुआ। [illegible] नाम था "अर्थशास्त्रकी समालोचना, भाग १" ([illegible])। "श्रम" और "पूंजी" सम्बन्धी मार्क्सीय सिद्धान्तोंकी

पहली विस्तृत व्याख्या यहाँ मिलती है। इटलीके युद्धके समय मार्क्सने लन्दनमें प्रकाशित जर्मन अखबार "दास फोल्क" (जनता) में बोनापार्टिज्म और उस समयकी जर्मन-नीति, दोनोंकी ही तीव्र आलोचना की। बोनापार्टिज्म वाले उस समय उदार मतका स्वांग रच रहे थे और पीड़ित जातियोंके उद्धारकका बाना धारण किये थे। और उस समयकी जर्मन-नीति तटस्थताके बहाने दूसरे ही दाँव-घातमें थी। इस सम्बन्धमें कार्ल फोग्टकी तीव्र आलोचना करना भी आवश्यक था, क्योंकि वह राजकुमार नेपोलियन (प्ल.-प्लों) की आज्ञासे और लुई नेपोलियनसे धन पाकर जर्मनीकी तटस्थता ही नहीं, उसकी सहानुभूतिके लिये भी आन्दोलन कर रहा था। फोग्टने एकदम भद्दे और जान-बूझकर रचे हुए झूठे आक्षेपोंसे उत्तर दिया; तब मार्क्सने "हर फोग्ट" (लन्दन १८६०) के रूपमें उनका प्रत्युत्तर दिया। इस पुस्तकमें उन्होंने फोग्ट और साम्राज्यवादी गुटके दूसरे नक़ली जनवादी लोगोंका बखिया उधेड़ कर रख दी। स्वयं फोग्टको बाह्य और आन्तरिक साक्ष्यके आधारपर दिसम्बरके साम्राज्यसे घूस लेनेके अपराधपर दण्ड मिला। दस साल बाद पक्का सबूत भी मिल गया। १८७० में तुइलेरीमें बोनापार्टके दलालोंकी एक सूची मिली, जिसे सितम्बरकी सरकारने प्रकाशित कराया। उसमें "फ" अक्षरके नीचे लिखा था—"फ़ोग्ट—अगस्त १८५९ में उसे ४०,००० फ्रैंक दिये गये।"

अन्तमें १८६७ में हाम्बुर्गमें, मार्क्सकी मुख्य कृति "पूँजी" खंड १, प्रकाशित हुई (डास कापीटाल, क्रिटीक देर पोलीटीशेन ईकोनोमी, एर्स्टेर बाण्ड)। इसमें उनकी आर्थिक समाजवादी कल्पनाओंके आधारकी व्याख्या है और वर्तमान समाजकी आलोचनाकी खास-खास बातें हैं। इसमें उन्होंने पूँजीवादी उत्पादन और उसके फलाफलकी आलोचना की है। इस युगप्रवर्तक पुस्तकका दूसरा संस्करण १८७२ में प्रकाशित हुआ। इस समय वह उसके दूसरे भागके विस्तारमें लगे हुए हैं।

इसी बीच योरपके विभिन्न देशोंमें मजदूर-आन्दोलन इतना जोर पकड़ चुका था कि मार्क्स अपनी पुरानी आकांक्षाको चरितार्थ कर सकते थे। उनकी इच्छा थी कि एक ऐसी मजदूर-सभाकी नींव डाली जाय जिसमें

[illegible] होता था, जाहिर है कि इसने सोशलिस्ट [illegible] पूँजीपतियों और [illegible] ऐतिहासिक और [illegible] इस घटनाक्रमको [illegible] [illegible] मिल गया। [illegible] [illegible] था। इसके लिये [illegible] १८६४ में [illegible] सभा हुई। तभी [illegible] (इण्टरनेशनल वर्किंगमेन्स एसोसिएशन) की [illegible] (जनरल काउन्सिल) [illegible] कार्यकारिणियोंके प्रमुख [illegible] १८६४ में [illegible] (इनॉगुरल एड्रेस) से [illegible] इण्टरनेशनलकी जनरल [illegible] लिखे, वे सब मार्क्सके ही लिखे हुए थे। [illegible] इण्टरनेशनलका ही वर्णन है, जो [illegible] है।

[illegible] (१८७१—[illegible]) की [illegible] इण्टरनेशनलकी स्थिति [illegible] आगे [illegible] जिन घटनाओंने [illegible] लगा [illegible] सके और उनसे काम न ले सके। [illegible] भिन्न-भिन्न [illegible] थी, जिसमें मजदूर-[illegible] लिये फिर [illegible] जाना। इसके सिवा हर [illegible] थे, जो इण्टरनेशनलकी [illegible] हुई [illegible] चाहते थे, [illegible] और [illegible] चाहते थे। [illegible] निर्णय [illegible] मार्क्सने ही यह निर्णय किया और [illegible] प्रस्ताव द्वारा इण्टर-नेशनलने [illegible] (अराजकतावादियों—सं.) के कार्योंकी जिम्मेदारी

लेनेसे इनकार किया। इन्हीं लोगोंसे इण्टरनेशनल अवांछित और ज्ञान-शून्य आगन्तुकोंका केन्द्र बना था। यह देखते हुए कि व्यापक प्रतिक्रियाके सामने आये दिनकी माँगोंको पूरा करना असम्भव है, और बिना ऐसा बलिदान किये, जिससे मजदूर आन्दोलन की कमर ही टूट जाय, उनकी कार्यकुशलता और तत्परताको बनाये रखना असम्भव है, इण्टरनेशनल कुछ समयके लिये रणभूमिसे हट गया और जनरल काउन्सिलका मुख्य स्थान अमरीका बना दिया गया। उस समय और उसके बाद भी इस निर्णय पर काफी टीका-टिप्पणी हुई है, लेकिन निर्णयके परिणामोंने उसका औचित्य भली भाँति प्रकट कर दिया है। एक ओर इसका फल यह हुआ कि इण्टर-नेशनलके नामपर जगह-जगह शासन-सत्ता पर अधिकार करनेके बेकार प्रयत्न बन्द हो गये। दूसरी ओर विभिन्न देशोंका सोशलिस्ट मजदूर पार्टियोंका निकट सम्पर्क बना रहा, जिससे साबित हो गया कि इण्टरनेशनलने सभी देशोंके मजदूरोंके हितों की समानता, और उनके दृढ़ संगठनकी जो भावना जगायी थी, वह एक अन्तर्राष्ट्रीय संघके नियमित बन्धनके बिना भी—जो उस समय सचमुच बन्धन बन गया था—व्यक्त हो सकती थी।

आखिरको हेग कांग्रेसके बाद मार्क्सको फिर अपना सैद्धान्तिक कार्य करनेके लिये समय और शान्ति मिली। आशा है कि वह शीघ्र ही "पूंजी" का दूसरा भाग भी प्रेसके लिये तैयार कर लेंगे।

विज्ञानके इतिहासमें मार्क्सने जिन महत्वपूर्ण बातोंका पता लगाकर अपना नाम अमर किया है, उनमेंसे हम यहाँ दो का ही उल्लेख कर सकते हैं।

पहली तो वह क्रान्ति है, जो संसारके इतिहासको देखने-परखनेके दृष्टि-कोणमें उन्होंने की है। इतिहासको देखने-परखनेका जो दृष्टिकोण पहले था, वह इस धारणापर निर्भर था कि सभी तरहके ऐतिहासिक परिवर्तनका मूल कारण मनुष्योंके परिवर्तनशील विचारोंमें ही मिलेगा, और सभी तरहके ऐतिहासिक परिवर्तनोंमें सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तन ही हैं तथा सम्पूर्ण इतिहासमें उन्हींकी प्रधानता है। लेकिन लोगोंने यह प्रश्न न किया था कि मनुष्योंके दिमागमें ये विचार आते कहाँसे हैं और राजनीतिक परिवर्तनोंकी प्रेरक शक्तियाँ कौनसी हैं। केवल नये फ्रान्सीसी और कुछ-कुछ

[illegible] आशा लगाया गया था कि इनसे इस [illegible] के लिये वर्तमान पूंजीवादी [illegible] शक्ति रहा है। [illegible] सर्व-साधारणका [illegible] सामाजिक संबंधोंका उनके [illegible] सामाजिक भावनाओं [illegible] रहा है। [illegible] नये [illegible] लेकिन [illegible] क्योंकि जन्म [illegible] उनका [illegible] के विभिन्न [illegible] जिसके लिए [illegible] किसी भी ढंगसे [illegible] विनिमय करता है। [illegible] समाज में, जो अपनी आ- [illegible] उनके विनिमयका [illegible] इस सामाजिक एकता प्राप्त [illegible] उत्पादकों और परस्पर [illegible] पहले [illegible] सामाजिक था, आगे [illegible] पूंजीवादी उनका [illegible] अपनेको, [illegible] लिया।

[illegible] १४ [illegible] दुनियाका [illegible] के लिये [illegible] उद्योग-धन्धोंके लिये नयी [illegible] लिया जाने लगा और [illegible] पैमानेपर चलने वाले उद्योग- [illegible] —खासकर आपसे [illegible] हुआ। इनका व्यापार पर [illegible] हो गयी और [illegible] देशके

आजकलके चिट्ठी-पत्रीके साधन, जहाज, रेल, बिजलीकी टेलीग्राफी जारी किये गये। इस प्रकार पूँजीवादी वर्ग क्रमशः समाजकी सम्पत्ति और शक्तिको अपने हाथोंमें केन्द्रित करने लगा। लेकिन काफी अर्से तक राजनीतिक शक्तिसे वह वञ्चित रहा। यह शक्ति सरदारों और उनके सहारे टिकी हुई शाहंशाहीके हाथमें थी। लेकिन एक मंजिल ऐसी आयी—फ्रान्समें वहाँ की महान् राज्यक्रान्तिके बाद—जब उसने राजनीतिक शक्तिको भी हथिया लिया, और तबसे वह सर्वहारा वर्ग और साधारण किसानोंका शासकवर्ग बन गया।

इस दृष्टिकोणसे, समाजकी विशेष आर्थिक स्थितिका सम्यक् ज्ञान होनेसे, इतिहासकी सभी बातोंकी बड़ी सरलतासे व्याख्या की जा सकती है। यह नहीं है कि हमारे पेशेवर इतिहासकारोंमें इस ज्ञानका अभी सर्वथा अभाव है। इसी प्रकार हर ऐतिहासिक युगकी धारणाओं और उसके विचारोंकी व्याख्या, बड़ी सरलतासे, उस युगकी आर्थिक परिस्थितियों और सामाजिक और राजनीतिक सम्बन्धोंके आधारपर, की जा सकती है। इन सम्बन्धोंकी रूपरेखा भी आर्थिक परिस्थितियों द्वारा ही निश्चित होती है। इतिहासको पहली बार अपना वास्तविक आधार मिला। यह आधार एक बहुत ही स्पष्ट सत्य था, जिसकी ओर लोगोंका ध्यान न गया था। यानी यह कि मनुष्यको सबसे पहले खाना, पीना, कपड़ा पहनना और घरमें रहना होता है; इसलिये उसे काम भी करना होता है। इसके बाद ही प्रधानताके लिये मनुष्य एक दूसरेसे झगड़ सकते हैं, और राजनीति, धर्म, दर्शन आदिको अपना समय दे सकते हैं। आखिरकार इस स्पष्ट सत्यको अपना ऐतिहासिक अधिकार प्राप्त हुआ।

समाजवादी दृष्टिकोणके लिये इतिहासकी यह नयी धारणा अत्यंत महत्वपूर्ण थी। इससे पता लगा कि पहलेके संपूर्ण इतिहासकी गति वर्ग-विरोध और वर्ग-संघर्षोंके बीचमें रही है; शासक और शासित, शोषक और शोषितका अस्तित्व बराबर रहा है; मनुष्य-जातिके अधिकांश भागके पल्ले मसक्कत-मजूरी ज़्यादा पड़ी है, भोग-विलास कम। ऐसा क्यों हुआ? इसीलिये कि मनुष्य-जातिके विकासकी सभी पिछली मंजिलोंमें उत्पादनका विकास इतना कम हुआ था कि ऐतिहासिक विकास इस द्वंद्वको ही लेकर चल सकता था।

[illegible] प्राप्त, एक अल्पसंख्यक समुदाय पर [illegible], जो [illegible] अपना पेट भरनेके ही लिये [illegible], वहाँ उस अल्पसंख्यक वर्गके लिये इतना [illegible] पड़ता था। पहलेके वर्ग- [illegible] जाता था, वहाँ इतिहासकी [illegible] एक भौतिक और व्यावहारिक व्याख्या [illegible] कि समाजकी उत्पादक शक्तियोंके [illegible] देखते, कोई भी बहाना [illegible] शोषक और शोषितके [illegible] पूँजीवादी वर्गने अपना ऐतिहासिक [illegible] करनेके प्रयोजन है। व्या- [illegible] देशों में उद्योग- [illegible] —यह सिद्ध हो गया है कि यह वर्ग उत्पादनके विकासमें [illegible] सर्वहारा वर्गके हाथमें आ [illegible], समाजकी [illegible] स्थितिके कारण, सभी तरहके वर्ग- [illegible], [illegible] और शोषणका अन्त करके ही अपनेको आज़ाद कर सकता है। [illegible] उत्पादक-शक्तियाँ जो पूँजीवादी नियन्त्रणकी सीमाओंको पार कर चुकी हैं, [illegible] संगठित [illegible] की बाट देख रही हैं कि यह [illegible] हो, जिससे ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो कि समाजका [illegible] उत्पादनके [illegible] न ले सके, वरन् सामाजिक सम्पत्तिके वितरण और [illegible] बँटा सके। सम्पूर्ण उत्पादनको, [illegible] अनुसार चलानेसे, समाजकी उत्पादक शक्तियोंसे और उनकी देनसे, [illegible] सभी उचित आवश्यकताओंकी पूर्ति हो [illegible] और [illegible] पूर्तिमें भी उत्तरोत्तर वृद्धि होगी।

मार्क्सने [illegible] महत्वपूर्ण बातका पता लगाया है, वह पूँजी और श्रमके [illegible] निश्चित व्याख्या है। दूसरे शब्दोंमें, उन्होंने यह दिखा दिया कि वर्तमान समाजमें उत्पादनकी जो पूँजीवादी पद्धति चालू है, उसके किस तरह पूँजीपति मज़दूरका शोषण करता है। जब एक बार अर्थशास्त्रने

यह सिद्धान्त बना लिया कि सभी सम्पत्ति और "मूल्य" का मूल स्रोत श्रम ही है, तो यह प्रश्न भी अनिवार्य रूपसे सामने आया कि "इस सिद्धान्तसे हम इस तथ्यका मेल कैसे करें कि मजदूर अपने श्रमसे जिस मूल्यका निर्माण करता है, वह सब उसे नहीं मिलता, वरन् उसका एक अंश उसे पूँजीपतिको दे देना पड़ता है ?" पूँजीवादी और समाजवादी—दोनों ही तरहके—अर्थशास्त्रियों ने इस प्रश्नका ऐसा उत्तर देनेका प्रयत्न किया, जो वैज्ञानिक दृष्टिसे संगत हो परन्तु वे विफल हुए। अन्तमें मार्क्सने इसका सही उत्तर दिया। यह उत्तर इस प्रकार है: उत्पादनकी वर्तमान पूँजीवादी पद्धति पहलेसे ही समाजके दो वर्गोंका अस्तित्व मान लेती है; एक ओर पूँजीपतियोंका वर्ग है, जिनके हाथमें उत्पादन और जीविकाके साधन हैं दूसरी ओर सर्वहारा वर्ग है जो इस प्राप्तिसे वञ्चित रहनेके कारण अपनी श्रम-शक्तिको ही बेच सकता है। जीवन-यापनके साधन प्राप्त करनेके लिये उसे अपनी श्रमशक्ति बेचनी पड़ती है। किसी भी वस्तुका मूल्य उसके उत्पादनमें और पुनरुत्पादनमें भी, सामाजिक दृष्टिसे आवश्यक श्रमकी मात्रासे निश्चित होता है। इसलिये औसत आदमीकी एक दिन, महीने या सालकी श्रम-शक्तिका मूल्य श्रमकी उस मात्रासे निश्चित होता है जो एक दिन महीने या सालके लिये उसकी श्रम-शक्तिको बनाये रखनेके लिये जीविकाके आवश्यक साधनोंकी मात्रामें निहित होती है। मान लें कि किसी मजदूरकी एक दिनकी जीविकाके साधनोंके उत्पादनके लिये छः घंटोंका श्रम आवश्यक है। दूसरे शब्दोंमें, उन साधनोंमें जो श्रम निहित है, वह छः घंटोंकी मजूरीके बराबर है। एक दिनके श्रमका मूल्य जब पैसोंमें आँका जायगा, तो उस धनमें भी मजूरीके छः घंटे निहित होंगे। हम यह भी मान लें, मजदूरसे काम लेनेवाला पूँजीपति यह धन उसे बदलेमें देता है और इसलिये उसकी श्रम-शक्तिकी पूरी कीमत अदा कर देता है। अब अगर मजदूर दिनमें छः घंटे पूँजीपतिके लिये काम करता है, तब वह उसकी दी हुई मजूरीको अपने कामसे चुकता कर देता है—छः घंटोंके श्रमके लिये वह छः घंटोंका श्रम कर देता है। यह सही है कि इसमें पूँजीपतिके पल्ले कुछ भी नहीं पड़ा, इसलिये वह इस चीजको दूसरी तरहसे देखता है। वह कहता है कि, "मैंने इस मजदूरकी श्रम-शक्तिको छः

[illegible] के लिये जरूरी है।" इसीलिये वह मजदूरी [illegible] ८, १०, १२, १४ [illegible] काम कराना [illegible] फल होता है [illegible] पूंजीपतियोंको [illegible] काम करनेवाला मजदूर [illegible] वरन् उसके लिये वह "अतिरिक्त [illegible], जिसे [illegible] पूंजीपति हड़प जाता है [illegible] अनुसार वह पूंजी [illegible] होता है, जिससे [illegible] (सरप्लस वैल्यू), [illegible] है, और पूंजी जुटता है, [illegible] भोगते थे उसका [illegible] परन्तु [illegible] है कि [illegible] वैसे ही बेगार लेते [illegible] से काम लेता था या कोई सामंत [illegible] के इन रूपोंमें यही भेद [illegible] उनके अतिरिक्त मजदूरोंकी मेहनत [illegible] वे भिन्न हैं। उससे स्वार्थी वर्गोंका [illegible] छिन्न-भिन्न हो जाता है। उनका यह कहना कि [illegible] हैं, [illegible] हैं, अधिकारों और कर्तव्योंमें [illegible] हैं, आदि सब झूठा साबित हो जाता है। [illegible] पूंजीवादी समाज हमारे सामने पूर्ववर्ती समाजोंके ही समान [illegible] है, जिनमें जनताका विशाल भाग [illegible], जिनकी [illegible] क्रमशः क्षीण होती जाती है, [illegible]।

[illegible] इन दो महत्त्वपूर्ण बातोंपर स्थित है। "पूंजी" [illegible] इन बातों [illegible] और समाजकी पूंजीवादी व्यवस्थाके सम्बन्धमें दूसरी [illegible] बातोंका विस्तार किया जायगा। इस प्रकार अर्थशास्त्रके वे पहलू [illegible] पहले [illegible] नहीं हुई, एक नये क्रान्तिकारी ढंगसे पेश किये

जायेंगे। मार्क्स उसे शीघ्र प्रेसके लिये तैयार कर सकें, यही हमारी कामना है।



कार्ल मार्क्सकी समाधिपर एंगेल्स का भाषण

(हाईगेट सिमिट्री, लन्दन, १७ मार्च, १८८३)

१४ मार्चको दोपहरके पौने तीन बजे संसारके सबसे बड़े विचारककी चिन्तन-क्रिया बन्द हो गयी। उन्हें मुश्किलसे दो मिनटके लिये अकेले छोड़ा गया होगा, लेकिन जब हमलोग लौट कर आये तो देखा कि वह आरामकुर्सी पर शान्तिसे सो गये हैं—परन्तु सदाके लिये। इस मनुष्यकी मृत्युसे योरप और अमरीकाके लड़ाकू सर्वहारा वर्ग और ऐतिहासिक विज्ञानकी अपार क्षति हुई है। इस ओजस्वी आत्माके विछोहसे जो अभाव पैदा हो गया है, लोग शीघ्र ही उसका अनुभव करेंगे।

जैसे कि सजीव-प्रकृतिमें डार्विनने विकासके नियमका पता लगाया था, वैसे ही मानव-इतिहासमें मार्क्सने विकासके नियमका पता लगाया था। उन्होंने इस साधारण सी बातका पता लगाया—जो अब तक सिद्धांतोंके जालसे ढंकी हुई थी—कि राजनीति, विज्ञान, धर्म, कला आदि-आदिको अपना समय देनेके पूर्व मनुष्य-जातिके लिये पहले खाना-पीना, कपड़े पहनना और घरमें रहना आवश्यक है। इसलिये जीविकाके तात्कालिक भौतिक साधनोंका उत्पादन और फलतः किसी भी युगमें समाजके आर्थिक विकासकी मंजिल ही, वह नींव है जिसपर राजकीय संस्थाएँ, न्याय-सम्बन्धी कल्पनाएँ, कला और यहाँ तक कि लोगोंके धार्मिक विचार भी फलते-फूलते हैं। उन्हींके प्रकाशमें इन सबकी व्याख्या की जा सकती है, न कि इससे उल्टा, जैसा कि अब तक होता रहा है।

परन्तु इतना ही नहीं, मार्क्सने गतिके उस विशेष नियमका पता लगाया जिनसे उत्पादनकी पूँजीवादी पद्धति और इस पद्धतिसे उत्पन्न पूँजीवादी

[illegible] उनके जीवनका मूल उद्देश्य [illegible] सुधार करनेमें ही उनके [illegible] [illegible] लगन प्यार [illegible] लानेवाले [illegible] प्रथम "[illegible]" [illegible] (१८४८), [illegible] "[illegible]" (१८५२-६१) में [illegible] (१८४८-४९), और "[illegible]"

उनका काम, इनके सिवा सैकड़ों जोरदार पुस्तिकाएँ; पेरिस, ब्रुसेल्स और लन्दनके क्रान्तिकारी क्लबोंमें कार्य, और इन सबके सिर पर "अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ" की स्थापना, ऐसा कार्य है जिसके ऊपर उसके जन्मदाताको यथेष्ट गर्व हो सकता था, चाहे उसने और कुछ भी न किया होता।

इस सबके फलस्वरूप मार्क्स अपने युगके सबसे लाञ्छित और प्रताड़ित व्यक्ति थे। एकसत्तावादी और जनतंत्रवादी—दोनों ही तरहकी सरकारोंने उन्हें अपने राज्योंसे निकाल दिया। पूँजीपति, चाहे वे पुरानपंथी हों चाहे परले सिरेके जनवादी हों, मार्क्सको बदनाम करनेमें एक दूसरेसे बाजी मारते थे। मार्क्स इस सब विरोध और दमनको मकड़ीके जालेकी तरह एक तरफ हटा देते थे, उसकी ओर ध्यान न देते थे—आवश्यकतासे बाध्य होकर ही उत्तर देते थे। और अब वह इस संसार में नहीं हैं। साइबेरिया की खानोंसे लेकर कैलिफोर्निया तक, योरप और अमरीकाके सभी भागोंमें उनके लाखों क्रान्तिकारी साथी, जो उन्हें प्यार करते थे, उनके प्रति श्रद्धा रखते थे, आज उनके निधनपर आँसू बहा रहे हैं। मैं कह सकता हूँ कि उनके विरोधी बहुतसे थे, परन्तु उनका व्यक्तिगत शत्रु एक भी नहीं था।

उनका नाम युगों-युगों तक अमर रहेगा; वैसे ही उनका काम भी अमर रहेगा!



कार्ल मार्क्स और उनकी देन

(यह लेख लेनिनने १९१४ के जुलाई और नवम्बर महीनेमें लिखा था और ग्रानात शब्दकोशके सातवें संस्करणमें पहली बार छपा था—सं.)

कार्ल मार्क्सका जन्म ५ मई, १८१८ को त्रेव नगर (प्रशियाके राइन प्रान्तमें) हुआ था। उनके पिता एक यहूदी वकील थे जिन्होंने १८२४ में प्रोटेस्टेंट मत स्वीकार किया था। यह परिवार सम्पन्न और सुसंस्कृत था, परन्तु क्रान्तिकारी नहीं था। त्रियेरकी पाठशाला (जिम्नेशियम) में शिक्षा पानेके बाद, वह पहले बोन, फिर बर्लिन विश्वविद्यालयमें भर्ती हुए। वहाँ वह कानून पढ़ते थे, लेकिन अधिकांश समय इतिहास और दर्शनको देते थे।

[illegible] गया। इसके बाद इन्होंने [illegible] [illegible] किया। इस समय तक मार्क्स [illegible] लेकिन [illegible] [illegible] [illegible] नास्तिक और क्रान्तिकारी [illegible]।

[illegible] मार्क्स [illegible] सम्पादक [illegible] मार्क्सने सम्पादन कार्य [illegible] १८३७ में लुडविग फायर- [illegible] १८३६ में [illegible] [illegible] १८४१ में [illegible] [illegible] [illegible] लुडविग [illegible] १८३६ के बाद [illegible] और वे [illegible] की ओर झुक चले थे। १८४१ [illegible] प्रकाशित हो गयी था (अब [illegible] [illegible])। १८४३ में इनकी पुस्तक [illegible] (ईसाई धर्मके [illegible]) प्रकाशित हुई। [illegible] मार्क्सने लिखा था—"[illegible] [illegible] [illegible] ([illegible]) "[illegible] [illegible]" [illegible] (रेडिकल) [illegible] था, [illegible] (१ जनवरी १८४२)। मार्क्स [illegible] बुलाया गया। तदनुसार १८४२ [illegible] सम्पादक हो गये और बोनसे कोलोन चले [illegible] सम्पादन-[illegible] [illegible] क्रान्तिकारी- [illegible] पत्र पर [illegible] और [illegible] फिर १ [illegible] १८४३ में इसे एकदम बन्द हो कर [illegible] [illegible] मार्क्सको उस तिथिसे पहले ही अपना सम्पादन

छोड़ना पड़ा। परन्तु उनके अलग होनेसे पत्र बच नहीं सका। मार्च १८४३ में उसे बन्द होना पड़ा। "राइनिशे त्साइटुङ्" मे मार्क्सके जो लेख प्रकाशित हुए, उनमें नीचे जिन लेखोंकी चर्चा हुई है, उनके अलावा एंगेल्सने मोजेलकी घाटीके शराब पैदा करनेवाले किसानों पर एक लेखका नाम लिया है। मार्क्सने अपने पत्रकार-अनुभवसे जान लिया कि अभी वह अर्थशास्त्रसे भली भाँति परिचित नहीं हैं, इसलिये वे उसका अध्ययन करनेमें जुट गये।

१८४३ में मार्क्सने क्रायस्नाखमें जेनी फॉन वेस्टफालेनसे विवाह किया। जेनी उनकी बचपनकी मित्र थी, और मार्क्स जब विद्यार्थी थे, तभी उनसे बातचीत पक्की हो गयी थी। जेनी प्रुशियन सरदारोंके एक प्रतिक्रियावादी परिवारमें उत्पन्न हुई थीं। १८५०-५८ के अत्यन्त प्रतिक्रियावादी युगमें उनका बड़ा भाई प्रुशियाका गृह-सचिव रहा था। १८४३ की शरद्‌में मार्क्स, एक उग्र विचारोंकी पत्रिका निकालनेके उद्देश्यसे पेरिस आये। उनका साथ देनेवाले आर्नोल्ड रुगे थे (१८०२–८०; गरम दलके हेगेलपंथी; १८२५-१८३०—जेलमें. १८४८ के बाद राजनीतिक कालापानी; १८६६-७० के बाद बिस्मार्कके अनुयायी)। इस पत्रिकाका नाम था "दोइत्शे फ्रांत्सोसिशे यारव्यूखेर"; उसका एक ही अंक प्रकाशित हुआ। जर्मनीमें गुप्त वितरण और रुगेसे मतभेद होनेके कारण भी उसे बन्द कर देना पड़ा। इस पत्रिकामें प्रकाशित अपने लेखोंमें मार्क्स क्रान्तिकारी दिखायी देते हैं। वह "सभी बातोंकी निर्मम आलोचना" विशेष कर "सशस्त्र आलोचना", का समर्थन करते हैं और जनता और सर्वहारा वर्गसे अपील करते हैं।

सितम्बर १८४४ में एंगेल्स कुछ दिनके लिये पेरिस आये और तबसे मार्क्सके घनिष्ठ मित्र हो गये। पेरिसके क्रान्तिकारी गुटोंके सक्रिय जीवनमें दोनोंने प्रत्यक्ष रूपसे भाग लिया (यहाँ पर प्रूधोंके सिद्धान्तोंका बोलबाला था; आगे चलकर १८४७ में मार्क्सने "दर्शनशास्त्रकी निर्धनता" नामकी अपनी पुस्तकमें उन सिद्धान्तोंकी बखिया उधेड़ दी)। निम्न पूँजीवादी समाजवादके विभिन्न सिद्धान्तोंसे डटकर लड़नेके साथ-साथ उन्होंने क्रान्तिकारी सर्वहारा-समाजवाद या कम्युनिज़्म (मार्क्सिज्म) के सिद्धान्तों और कार्य-नीतिकी रूपरेखा निश्चित की। १८४५ में प्रुशियाके सरकारके इशारेपर

मार्क्स [illegible] देकर पेरिससे निकाल दिया गया। [illegible] १८४७ के वसन्तमें मार्क्स और एंगेल्स एक [illegible] (कम्युनिस्ट लीग) के सदस्य हो गये। [illegible] (लन्दन, नवम्बर, १८४७) उन्होंने विशेष [illegible] "कम्युनिस्ट पार्टीका [illegible]", जो फरवरी १८४८ में प्रकाशित हुआ। एक महान् [illegible] और [illegible] यह [illegible] संसारकी एक [illegible] इसमें [illegible] संगत [illegible] है। यह घोषित करता है [illegible] और [illegible] सिद्धान्त है। [illegible] कम्युनिस्ट समाजके निर्माणमें [illegible] प्रतिपादन किया।

[illegible] १८४८ [illegible] शुरू हुआ, तो मार्क्स बेल्जियमसे [illegible] मार्क्सको [illegible] के बाद वहाँसे [illegible] १ जून १८४८ से १९ मई १८४९ तक [illegible] 'न्यू राइनिशे त्साइटुङ्' निकलता रहा जिसके प्रधान सम्पादक मार्क्स थे। १८४८-४९ की क्रान्तिकारी घटनाओंने नये सिद्धान्तकी पुष्टि [illegible] और जनवादी आन्दो-लनोंसे [illegible] पुष्टि हुई है। [illegible] पहले [illegible] मुकदमा चला (९ फरवरी १८४९, बादमें वह छोड़ दिये गये)। फिर १९ मई १८४९ को उन्हें जर्मनीसे देशनिकाला दे दिया गया। वह फिर पेरिस गये, [illegible] १३ जून १८४९ के प्रदर्शनके बाद, वहाँसे निकाल दिये गये। [illegible] लन्दन चले गये और [illegible] उन्होंने जीवनके शेष दिन बिताये।

मार्क्स-एंगेल्सकी पत्र-व्यवहारमें (१९१३ में प्रकाशित) मार्क्सके [illegible] प्रकाश पड़ता है। मार्क्स और उनके परिवारको [illegible] पड़ा। एंगेल्सने आत्मत्याग करके मार्क्सकी आर्थिक सहायता न की होती, तो वह "पूँजी" को ही पूरा न कर पाते, [illegible]

वरन् अभावग्रस्त होकर वह निश्चय ही मर मिटते। इसके सिवा निम्न-पूँजीवादी और साधारणतः सर्वहारासे इतर, समाजवादके प्रचलित सिद्धान्तों और वृत्तियोंने मार्क्सको निरन्तर ही निर्ममतासे लड़ते रहने पर बाध्य किया। कभी-कभी उन्हें भयानक और एकदम भद्दे व्यक्तिगत आक्षेपोंका उत्तर (हर फ़ाग्ट) देना पड़ता था। प्रवासी गुटोंसे दूर रहते हुए, मार्क्सने, अर्थशास्त्रके अध्ययनको अपना अधिकांश समय देते हुए, कई ऐतिहासिक कृतियोंमें भौतिकवादी सिद्धान्तोंको विकसित किया। "अर्थशास्त्रकी समालोचना" (१८५६) और "पूँजी" (खंड १, १८६७) में मार्क्सने इस विज्ञानमें क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया। (आगे देखिये—"मार्क्सवाद")।

१८५०-६० के लगभग जनवादी आन्दोलनोंमें जीवनकी नयी लहर दौड़ गयी, इससे मार्क्स फिर राजनीतिक कार्यक्षेत्रमें उतर पड़े। २८ सितम्बर १८६४ को अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर सभा—वही प्रसिद्ध पहली इण्टरनेशनल—की लंदनमें नींव डाली गयी। मार्क्स इस संगठनके प्राण थे। उसके पहले सम्भाषणके लेखक वही थे और पचीसों प्रस्तावों, वक्तव्यों घोषणापत्रोंको उन्होंने ही लिखा था। मार्क्सने विभिन्न देशोंके श्रमिक-आन्दोलनोंको एक किया; सर्वहारासे इतर, मार्क्सवादसे पहलेके समाजवादके विभिन्न रूपोंको (मेज़िनी, प्रूधों; बाकुनिन, इंग्लैण्डमें उदारमतका ट्रेड-यूनियन आन्दोलन, जर्मनीमें लासालकी नरमदलमें सहानुभूति) संयुक्त कार्यवाहीमें परिणत करनेकी चेष्टा की। मार्क्सने इन सभी मतों और धाराओंके सिद्धान्तोंसे लड़ाई की और इस प्रकार उन्होंने विभिन्न देशोंमें मजदूरवर्गके सर्वहारा-संघर्षकी एक कार्यनीति निश्चित की। पेरिस कम्यून (१८७१) के बाद—जिसका विश्लेषण मार्क्सने ("फ्रांसमें गृहयुद्ध" १८७१ में) ऐसी मर्मभेदी दृष्टिसे, सुघरतासे, औचित्यसे और ऐसे प्रभावशाली ढंग और क्रान्तिकारी मनोवृत्तिसे किया था—और बाकुनिनपंथियों द्वारा इण्टरनेशनलके टुकड़े होनेपर, उस संगठनके लिये योरपमें अपना हेडक्वार्टर बनाये रखना असम्भव हो गया। इण्टरनेशनलकी हेग काँग्रेस (१८७२) के बाद मार्क्सने उसकी स्थायी समितिको न्यूयार्क ले जानेके निश्चयको मान्य कराया। पहले इण्टरनेशनलने अपना ऐतिहासिक कार्य पूरा किया। उसके बाद एक ऐसा युग आया जिसमें

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

वह एक भौतिकवादी, विशेषकर फ़ायरबाख़के अनुयायी रहे। आगे चलकर भी उन्होंने देखा कि फायरबाख़की कमजोरी यही है कि उनका भौतिकवाद काफ़ी संगत और व्यापक नहीं है। मार्क्सके लिये फ़ायरबाख़की "युग-प्रवर्तक" और समस्त संसारके लिये ऐतिहासिक महत्ता इस बातमें थी कि उन्होंने पूरी तरहसे हेगेलके आदर्शवादसे नाता तोड़ लिया था। उनकी महत्ता उसी भौतिकवादको घोषित करनेमें थी जिसके लिये १८वीं सदीने (भी), विशेषकर फ़ान्समें, तत्कालीन राजनीतिक संस्थाओं और उनके साथ धर्म और पुराणोंसे ही नहीं...वरन् हर प्रकारके अतिभूतवाद (मेटाफ़िज़िक्स) ("स्वस्थ दर्शन" से भिन्न "उन्मत्त कल्पनाकी उड़ान") से लड़ना पड़ा था। ("लिटरारिशे नाखलास" "डी हाईलिगे फ़ामिलीमें" (पवित्र परिवार))।

"पूँजी" के प्रथम खंडके दूसरे संस्करणकी भूमिकामें मार्क्सने लिखा था: "हेगेलके लिये मानव मस्तिष्कका जीवन-क्रिया, अर्थात् चिन्तन-क्रिया जिसे वह "विचारतत्त्व" का नाम देकर एक स्वतन्त्र वस्तु मान लेते हैं, वास्तविक संसारकी मूल प्रेरक शक्ति है। वास्तविक संसार 'विचार-तत्त्व' का बाह्य और घटनात्मक रूप ही है। इसके विपरीत, मेरे लिये विचार-तत्त्व मानव मस्तिष्क द्वारा प्रतिबिम्बित, और चिन्तनके विभिन्न रूपोंमें परिवर्तित, बाह्य संसार छोड़कर और कुछ नहीं है।"

मार्क्सके भौतिक दर्शनके पूर्णरूपसे अनुकूल, और उसकी व्याख्या करते हुए एंगेल्सने "डूरिंग मत-खंडन" में (जिसकी पाण्डुलिपि मार्क्सने पढ़ी थी), लिखा था - "संसारकी एकता उसके अस्तित्वमें नहीं है। संसारकी वास्तविक एकता उसकी भौतिकता में है......जो दर्शन और प्रकृति-विज्ञानके एक सुदीर्घ और विलम्बित विकाससे सिद्ध होती है। भूत (या प्रकृति) के अस्तित्वकी पद्धतिका नाम गति है। कहीं भी भूतका अस्तित्व गतिके बिना नहीं रहा, न हो सकता है।...गतिके बिना भूत वैसे ही अचिन्तनीय है जैसे भूतके बिना गति। परन्तु यदि.. यह प्रश्न उठाया जाय कि विचार और चेतना क्या है; इनका उद्गम क्या है, तो यह प्रकट हो जाता है कि वे मानव-मस्तिष्क नज हैं और मनुष्य स्वयं प्रकृतिकी उपज है जिसका अपने वातावरणमें, उसके साथ, विकास हुआ है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

बहुत; ये "संसारके सामने भौतिकवादको अस्वीकार करते हुए भी उसे लुक-छिपकर मान लेते हैं"। इस सम्बन्धमें एंगेल्स और मार्क्सकी उपरोक्त कृतियों के सिवा एंगेल्स के नाम मार्क्सका १२ दिसम्बर १८६६ का पत्र भी देखना चाहिये। इसमें मार्क्सने प्रसिद्ध वैज्ञानिक टी० हक्सलेकी एक उक्तिका उल्लेख किया है जिसमें "उनका भौतिकवाद उभर कर आया है।" हक्सलेने लिखा था : "जब तक हम वास्तवमें देखने और सोचनेका काम करते हैं, तब तक हम संभवतः भौतिकवादसे बच नहीं सकते।" मार्क्सने उनपर दोष लगाया है कि उन्होंने अज्ञेयवाद और ह्यूमपंथके लिये एक बार फिर नयी "राह" छोड़ दी थी। स्वतन्त्रता और आवश्यकताके सम्बन्धमें मार्क्सका मत जानना हमारे लिये विशेष महत्वपूर्ण है। वह कहते हैं—"आवश्यकताका ज्ञान ही स्वतन्त्रता है। 'आवश्यकता वहीं तक अन्धी होती है जहाँ तक वह समझी नहीं जाती'।" (एंगेल्स : ड्यूरिंग-मत-खंडन)। इसका अर्थ है, प्रकृतिमें नियमकी वस्तुगत व्यापकताका परिचय और आवश्यकता स्वतंत्रतामें द्वंद्वात्मक रूपान्तर (साथ ही अज्ञात किन्तु ज्ञेय "मूल वस्तु" का "प्रतीत वस्तु" के रूपमें "वस्तु-सार" का "घटनाओं" के रूपमें परिवर्तन का बोध)। मार्क्स और एंगेल्सने "पुराने" भौतिकवादके, जिसमें फायरबाखका भौतिकवाद भी शामिल था, (बुखनर, फोग्ट और मोलेशॉटके "निम्न" भौतिकवादका कहना ही क्या!) ये मुख्य दोष बताये थे:—(१) वह "प्रधानतः यान्त्रिक" था और रसायन और प्राणिशास्त्रके नवीनतम विकासकी ओर उसने ध्यान न दिया था (आजकल भूत या प्रकृति सम्बन्धी विद्युत-सिद्धान्तका उल्लेख करना भी आवश्यक होगा), (२) वह अनैतिहासिक और अ-द्वंद्वात्मक था (द्वंद्वात्मक-विरोधी होनेसे अतिभूतवादी था) और सभी क्षेत्रोंमें संगत रूपसे विकासके दृष्टिकोणका अनुसरण न करता था; (३) वह "मनुष्य" की विवेचना काल्पनिक धरातलपर करता था, उसे "सामाजिक सम्बन्धों" के "समन्वय" के रूप में न देखता था (जो निश्चित और स्थूल रूपसे ऐतिहासिक हैं),—और इस प्रकार वह संसारकी "टीका करता था" जबकि प्रश्न उसे "बदलने" का था, अर्थात् प्रत्यक्ष क्रान्तिकारी कार्यवाहीका महत्व उसने न समझा था।

द्वन्द्ववाद

[illegible] प्रधान [illegible] सम्पूर्ण [illegible] है। [illegible], संसार और [illegible] है। [illegible] ([illegible]) ।

[illegible]

[illegible] था :

"[illegible] है — [illegible] — [illegible] । [illegible] परन्तु [illegible] है । [illegible], और [illegible] है। परन्तु [illegible] एक बात है और [illegible] कि, [illegible] दूसरी बात है।"
(एंगेल्स : लुडविग फायरबाख)

"द्वंद्वात्मक दर्शनके लिये कुछ भी अन्तिम, त्रिकाल-सत्य और पवित्र नहीं है। वह हर चीजमें, और हर चीजकी, क्षणभंगुरताका दर्शन कराता है। उसके सामने आवागमनके अबाध क्रमको छोड़कर, निम्नसे ऊर्ध्वकी ओर अविराम उन्नतिको छोड़कर, कुछ भी चिरन्तन नहीं है। और द्वंद्वात्मक दर्शन, चिन्तनशील मस्तिष्कमें इस क्रमके प्रतिबिम्ब मात्रके सिवा कुछ नहीं है।" (उपरोक्त)

इस प्रकार मार्क्सके अनुसार द्वंद्ववाद "बाह्य संसार और मानवीय चिन्तन दोनोंकी ही गतिके साधारण नियमोंका विज्ञान" है। (उपरोक्त)

हेगेलके दर्शनके इस क्रान्तिकारी पहलूको मार्क्सने अपनाया और उसे आगे बढ़ाया। द्वंद्वात्मक भौतिकवादको "अब ऐसे दर्शनकी जरूरत नहीं है जो और सब तरहके विज्ञानसे परे हो।" (एंगेल्स : डूरिंग-मत-खंडन—पृ. ३१)

पहलेके दर्शनमें अब "चिन्तन और उसके नियम—तर्कशास्त्र और द्वंद्ववाद" शेष रहे। हेगेलकी भाँति मार्क्स "द्वंद्ववाद" का जो अर्थ लगाते थे, उसमें वर्तमान बोध-सिद्धान्त भी आ जाता है। इसके अनुसार भी विषय-वस्तु पर वैसे ही विचार करना होगा—बोधके उद्गम और विकासका, अज्ञानसे ज्ञानकी ओर संक्रमणका, ऐतिहासिक अध्ययन करके उससे व्यापक परिणाम निकालना होगा।

वर्तमान कालमें प्रगति और विकासकी कल्पना प्रायः पूर्ण रूपसे सामाजिक चेतनामें घुस गयी है। परन्तु यह काम और तरहसे हुआ है, हेगेलके दर्शन द्वारा नहीं। परन्तु हेगेलके दर्शनके आधारपर मार्क्स और एंगेल्सने उसी कल्पनाकी जो व्याख्या की है, वह प्रचलित विकास-सिद्धान्तसे अधिक व्यापक और गम्भीर है। इस प्रचलित विकास-सिद्धान्तसे द्वंद्ववादकी अपेक्षित सार्थकताके कुछ लक्षण इस प्रकार हैं : विकास-क्रममें मालूम होता है कि पहलेकी मंजिलें फिर लौट कर आ रही हैं परन्तु ये मंजिलें एक दूसरे ढंगसे, एक और ऊंचे स्तर पर आती हैं ("अभावका अभाव"); यह विकास सीधी रेखामें न होकर शंखतुल्य आवर्तपूर्ण होता है; यह विकास हठात, क्रान्ति और ध्वंस द्वारा भी होता है; मात्राका गुणमें परिवर्तन होता है; किसी वस्तु घटनाक्रम या समाजपर घात-प्रतिघात करनेवाली विभिन्न शक्तियों अथवा

[illegible] संघर्ष, [illegible] प्रेरणा मिलती है; प्रत्येक घटनाके सभी [illegible] परस्पर-निर्भरता, और इस प्रकार [illegible] (इतिहास [illegible]), [illegible] होता है। (देखिए [illegible]) [illegible]

इतिहासकी भौतिकवादी धारणा

पुराने भौतिकवादकी असंगति, अपूर्णता और एकांगीपनका अनुभव करके मार्क्सने निश्चय किया कि "समाज-विज्ञान... का उसके भौतिक आधारके साथ सामञ्जस्य स्थापित करना और उस आधारपर उसका पुनर्निर्माण करना" आवश्यक है। (एंगेल्स : लुडविग फायरबाख ...)

चूँकि साधारणतया भौतिकवादके अनुसार चेतना अस्तित्वका परिणाम है, न कि इसके विपरीत, तो मनुष्य जातिके सामाजिक जीवनपर भौतिकवादको लागू करनेके लिए यह मानना जरूरी है कि सामाजिक चेतना सामाजिक अस्तित्वका परिणाम है।

"पूँजी" के प्रथम खंडमें मार्क्सने लिखा था :

"प्रविधिशास्त्रने यह बतलाया है कि प्रकृतिसे मनुष्य किस प्रकार व्यवहार करता है, वह उत्पादन-क्रम क्या है जिससे उसका जीवन-यापन होता है; और इससे उस पर्दाफाश भी हो जाता है जिसके अनुसार मनुष्यके सामाजिक सम्बन्ध और तज्जनित मानसिक धारणाएँ निर्मित होती हैं।" "अर्थशास्त्रकी समालोचना" में मार्क्सने मानव-समाज और उसके इतिहासपर लागू होनेवाले भौतिकवादके आधारभूत सिद्धान्तोंकी सम्बद्ध व्याख्या की है। यह व्याख्या इस प्रकार है :

"मनुष्य जो सामाजिक उत्पादन करते हैं, उसमें वे ऐसे निश्चित सम्बन्ध स्थापित करते हैं जो अनिवार्य और उनकी इच्छासे स्वतन्त्र होते हैं। ये उत्पादन सम्बन्ध उत्पादनकी भौतिक शक्तियोंके विकासकी एक निश्चित अवस्थाके अनुकूल ही होते हैं। इन उत्पादन-सम्बन्धोंका योग ही समाजका वह आर्थिक ढाँचा है, वह असली नींव है, जिसपर राज-

नीति और कानूनकी भारी इमारत खड़ी होती है; इसी ढाँचेके अनुरूप सामाजिक चेतनाके विभिन्न निश्चित रूप भी होते हैं। भौतिक जीवनमें उत्पादनकी पद्धति साधारण रूपसे सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक जीवन-क्रमको निश्चित करती है। मनुष्यकी चेतना उसकी सत्ताको निश्चित नहीं करती, इसके विपरीत उसकी सत्ता ही उसकी चेतनाको निश्चित करती है। अपने विकासकी एक नियत अवस्था तक पहुँच जानेके बाद समाजमें पुराने उत्पादन-सम्बन्धोंसे उत्पादनकी भौतिक शक्तियोंकी मुठभेड़ होती है, इसी बातको कानूनी भाषामें यों कह सकते हैं कि सम्पत्ति के जिन सम्बन्धोंमें पहले वे शक्तियाँ काम करती रही हैं, उनसे उनकी मुठभेड़ होती है। ये उत्पादन-सम्बन्ध उत्पादक-शक्तियोंके विकासके विभिन्न रूप न रहकर अब उनके बन्धन हो जाते हैं। इसके बाद सामाजिक क्रांतिका युग आरंभ होता है। आर्थिक ढाँचा बदलनेसे उसपर बनी हुई वह भारी-भरकम इमारत भी बहुत कुछ जल्दी ही बदल जाती है। इस तरहके परिवर्तनोंपर विचार करते हुए एक भेद अवश्य समझ लेना चाहिये। एक तो उत्पादनकी आर्थिक परिस्थितियोंमें भौतिक परिवर्तन होता है जिसे हम प्रकृति-विज्ञानकी सही नापतोलकी तरह आँक सकते हैं। दूसरा परिवर्तन कानूनी, राजनीतिक, धार्मिक, भावप्रधान या दार्शनिक—संक्षेपमें सैद्धांतिक-रूपोंका होता है जिसमें मनुष्य संघर्षके प्रति सचेत हो जाते हैं और निपटारेके लिये युद्ध करते हैं। किसी व्यक्तिके बारेमें हम अपनी धारणा इस बातसे नहीं बनाते कि वह अपने बारेमें क्या सोचता है; इसी तरह संक्रांति-युगकी अपनी चेतनाके बलपर हम उसे नहीं परख सकते। इसके विपरीत इस चेतनाकी व्याख्या हम भौतिक जीवनकी असंगतियोंके आधारपर करेंगे, उस विद्यमान संघर्षके बलपर करेंगे जो समाजकी उत्पादक शक्तियों और उत्पादन सम्बन्धोंमें हो रहा है।...मोटे तौरपर हम यह कह सकते हैं कि उत्पादनकी एशियाई, प्राचीन, सामंतशाही और आधुनिक पूँजीवादी प्रणालियाँ समाजके आर्थिक संगठनके विकासकी अलग-अलग मंजिलें हैं।..." (एंगेल्सके नाम मार्क्सके ७ जुलाई १८६६ के पत्रमें इस

शक्ति तथा और [illegible] हैं: "[illegible] है कि उत्पादनके साधनों द्वारा [illegible]-संगठन निर्धारित होता है।")

[illegible], [illegible] व्यक्तिगत [illegible] भौतिकवादके [illegible] प्रभावसे, [illegible] हो सके। पहलेके विद्वान [illegible]। मनुष्योंकी [illegible] ऐतिहासिक प्रभावको [illegible] के न [illegible] बिना [illegible]। वस्तुगत [illegible] है, [illegible] था। [illegible] उत्पादनके विकास-क्रम [illegible] नहीं [illegible] हुई है, [illegible] थे। इसके लिए, पहलेके [illegible] प्रयत्न [illegible] न करता था। [illegible] ऐतिहासिक भौतिकवादने यह पहला बार संभव हुआ कि जन-साधारणकी सामाजिक परिस्थितियों और उन परिस्थितियोंके परिवर्तन का हम वैज्ञानिक प्रामाणिकतासे अध्ययन करें। अधिकसे अधिक, मार्क्सके पहलेका समाज-विज्ञान और इतिहास केवल [illegible] घटनाओंके [illegible] सामग्री इकट्ठा कर देता था, और इतिहासके केवल अलग-अलग पहलुओंका वर्णन कर देता था। मार्क्सवादने विरोधी प्रवृत्तियोंकी संपूर्णताको लेकर, उनको [illegible] जो, समाजके विभिन्न वर्गोंकी उत्पादन-पद्धति और उनके जीवन-सम्बन्धी [illegible] परिस्थितियोंसे [illegible] इन प्रवृत्तियोंका सार निकाला कि उनको निश्चित शब्दोंमें व्याख्या हो सके। मार्क्सवादने इस "विशिष्ट" विचारोंके चुननेमें या उनकी व्याख्या करनेमें निरंकुशता और व्यक्तिगत भावनाएं हटाया और दिखाया कि बिना अपवाद [illegible] सभी विभिन्न प्रवृत्तियों और विचारोंका उद्गम उत्पादनकी भौतिक शक्तियोंकी परिस्थितियोंमें है। मार्क्सवादने सामाजिक आर्थिक संगठनों का उत्थान, विकास और नाशके एक व्यापक और सर्वांगीण अध्ययनका मार्ग दिखाया। मनुष्य अपने इतिहासके निर्माता हैं। परन्तु उनकी कार्य-प्रेरणा, अर्थात् समूहमें स्थित मनुष्योंकी कार्यप्रेरणाको निश्चित करने वाला कौन है? विरोधी विचारों और प्रयत्नोंके संघर्षका कारण कौन है? विरोधी विचारों

और प्रयत्नोंके संघर्षका कारण कौन है? मानव-समाजोंके सम्पूर्ण समूहमें इन संघर्षोंका पुँजीभूत परिणाम क्या होता है? भौतिक जीवनके उत्पादनकी वस्तुगत परिस्थितियाँ क्या हैं जो मनुष्यकी सम्पूर्ण ऐतिहासिक कार्यवाहीका आधार बनती हैं? इन परिस्थितियोंके विकासका नियम क्या है? इन सब बातोंकी ओर मार्क्सने ध्यान दिया और वह मार्ग दिखाया जिससे कि अपने चरम वैशिष्ट्य और विरोधके होते हुए भी, सूत्रबद्ध नियमित क्रमके रूपमें, इतिहासका वैज्ञानिक अध्ययन हो सके।

वर्ग-संघर्ष

किसी भी समाजमें कुछ लोगोंके प्रयत्न दूसरोंके प्रयत्नोंसे टक्कर खाते हैं; सामाजिक जीवन असंगतियोंसे पूर्ण है; इतिहास हमें जातियों और समाजोंके संघर्षका परिचय देता है और बताता है कि स्वयं प्रत्येक जाति और समाजके भीतर संघर्ष होता है जिससे कि क्रान्ति और प्रतिक्रिया, शांति और युद्ध, गतिरोध और द्रुतविकास या ह्रासके युग आते-जाते रहते हैं; ये तथ्य सर्वजन-विदित थे। मार्क्सवादसे इस ऊहापोह और शृंखला-हीनतामें नियमका शासन खोज निकालनेके लिये एक सूत्र मिल जाता है। यह सूत्र वर्ग-संघर्षका सिद्धान्त है। किसी भी समाजके या समाजोंके समूहके सभी सदस्योंके प्रयत्नोंकी सम्पूर्णताके अध्ययनसे ही इन प्रयत्नोंके परिणामकी वैज्ञानिक व्याख्या हो सकती है। जिन वर्गोंमें समाज विभाजित होता है, उनकी जीवन-पद्धति और परिस्थितियोंके भेदसे प्रयत्नोंकी मुठभेड़ पैदा होती है।

"कम्युनिस्ट घोषणापत्र" में मार्क्सने लिखा था, "अब तकके विद्यमान समाजका इतिहास वर्ग-संघर्षोंका इतिहास है।" (एंगेल्सने जोड़ दिया था—"आदिम जन-समुदायको छोड़ कर")

> "स्वतंत्र मनुष्य और दास (रोमके), अभिजात-वर्ग और साधारण प्रजा (पैट्रीशियन और प्लेबियन), सामन्त और कम्मी (अर्ध-गुलाम), संघ-बद्ध शिल्पी मालिक और मजदूर कारीगर, संक्षेपमें पीड़क और पीड़ितके बीच, समाजके अन्दर तीव्र संघर्ष चलता आया है। ये दोनों वर्ग, कभी छिपे कभी प्रकट, बराबर एक दूसरेसे लड़ते रहे। इस लड़ाईके अन्तस्वरूप या तो समाजके सारे ढाँचेके अन्दर आमूल

क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाता, या दोनों विरोधी वर्ग एक साथ बर्बाद हो जाते।...

“आधुनिक पूँजीवादी समाजने, जो कि सामन्तशाही समाजके ध्वंसावशेषसे पैदा हुआ है, वर्ग-विरोधको खतम नहीं कर दिया है। उसने केवल पुराने वर्गोंके स्थानमें नये वर्ग, उत्पीड़नकी नई शर्तें, और संघर्षके नये रूप खड़े कर दिये हैं।

“हमारे अपने युग, पूँजीवादी युगने, इसमें पुराने युगोंसे अलग यह विशेषता पैदा कर दी है कि इसने वर्ग-विरोधको सीधा-सादा (सरल) बना दिया है। आज सारा समाज अधिकाधिक दो बड़े विरोधी जमातोंमें, एक दूसरेके खिलाफ खड़े दो वर्गों—पूँजीपतियों और मजदूरों—में बँटता जा रहा है।”

फ्रान्सकी महान् क्रान्तिके बादसे योरपके सम्पूर्ण इतिहासमें कई देशोंमें बहुत स्पष्ट दिखाई देता है कि घटनाओंकी वास्तविक प्रेरणा वर्ग-संघर्ष है। फ्रान्समें राजसत्ताके पुनःस्थापनके युगमें कुछ ऐसे इतिहासकार हो गये थे (थियेरी, गीजो, मिन्ये, थियेर) जो घटनाओंका परिणाम निकालते हुए यह देखनेके लिये बाध्य हुए कि फ्रान्सके सम्पूर्ण इतिहासके समझनेकी कुञ्जी वर्ग-संघर्ष है। वर्तमान युगमें, जब पूँजीवादी वर्गकी पूर्ण विजय हो गयी है, जिस युगमें प्रतिनिधि-संस्थाएं हैं, (सभी मनुष्योंके लिये नहीं, तो भी) विस्तृत मताधिकार है, जनता तक पहुँचनेवाले सस्ते दैनिक हैं, मजदूरों और मालिकों आदिके शक्तिशाली और नित विस्तृत होनेवाले संगठन हैं,—इस युगमें और भी स्पष्ट रूपसे दिखाई देता है कि वर्ग-संघर्ष ही घटनाओंकी मूल प्रेरणा है (यद्यपि कभी-कभी बहुत ही दबा हुआ, “शान्तिपूर्ण”, और वैधानिक रूपमें)। मार्क्सके “कम्युनिस्ट घोषणापत्र” के निम्न वाक्योंसे पता चलेगा कि वर्तमान समाजमें प्रत्येक वर्गकी स्थितिके वस्तुगत विश्लेषणमें, और प्रत्येक वर्गके विकासकी दशाके निरीक्षणके लिये, मार्क्स सामाजिक विज्ञानमें क्या चाहते थे।

“पूँजीपति-वर्गके विरुद्ध आज जितने वर्ग खड़े हैं उन सबमें केवल मजदूर-वर्ग ही वास्तविक रूपसे क्रान्तिकारी है। दूसरे वर्ग आधुनिक उद्योग-

धंधोंके सामने नष्ट-भ्रष्ट होकर आखिरमें खतम हो जाते हैं। मजदूर-वर्ग उसकी आवश्यक और खास अपनी उपज है।

"निम्न मध्य-वर्गके लोग, छोटे कारखानेदार, दूकानदार, दस्तकार, किसान,—ये सब अपने मध्यवर्गीय अस्तित्वको बनाये रखनेके लिये पूँजीपति-वर्गके खिलाफ लड़ते हैं। इसलिये वे क्रान्तिकारी न होकर रूढ़िवादी होते हैं। बल्कि, इतना ही नहीं, वे प्रतिक्रियावादी हैं, क्योंकि वे इतिहासके पहियोंको पीछेकी ओर घुमानेकी कोशिश करते हैं। अगर संयोगसे वे क्रान्तिकारी होते हैं तो वह सिर्फ इस खयालसे कि वे देखते हैं कि बहुत जल्दी ही मजदूरों की श्रेणीमें पहुँच जायेंगे। इस भाँति वे अपने वर्तमान हितोंकी नहीं, बल्कि भविष्यके स्वार्थोंकी रक्षा करते हैं। वे अपना दृष्टिकोण छोड़कर मजदूर-वर्गका दृष्टिकोण अपना लेते हैं।"

मार्क्सने कई ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें भौतिकवादी इतिहास-लेखनके गम्भीर और श्रेष्ठ निदर्शन दिये। उन्होंने प्रत्येक वर्ग विशेषकी स्थिति और कभी-कभी एक ही वर्गके भीतरके विभिन्न गुटों या स्तरोंका विश्लेषण किया और स्पष्ट रूपसे दिखाया कि कब और कैसे "प्रत्येक वर्ग-संघर्ष राजनीति संघर्ष है।" ऊपरके उद्धरणसे पता चलता है कि समूचे ऐतिहासिक विकासका परिणाम निश्चित करनेके लिये मार्क्स सामाजिक, सम्बन्धोंके किस ताने-बाने और एक वर्गसे दूसरे वर्ग तक भूतकालसे भविष्य तकके संक्रमणकी अवस्थाओंका विश्लेषण करते हैं।

मार्क्सके आर्थिक सिद्धान्तों द्वारा मार्क्सवादका सबसे गभीर, बहुमुखी और सर्वांगीण पुष्टीकरण तथा प्रयोग हुआ है।

मार्क्सके आर्थिक सिद्धान्त

पूँजीके प्रथम खंडकी भूमिकामें मार्क्सने लिखा था—"इस पुस्तकका अन्तिम ध्येय वर्तमान समाज" (अर्थात् महाजनी, पूँजीवादी समाज) "की गतिके आर्थिक नियमको प्रकट करना है।" मार्क्सवादके आर्थिक भागका विषय किसी भी इतिहास द्वारा निश्चित समाजमें उत्पादन-सम्बन्धोंकी उत्पत्ति उनके विकास और ह्रासका अध्ययन है। पूँजीवादी समाजकी प्रमुख विशेषता

माल तैयार करना है और इस कारणसे मार्क्सका विश्लेषण मालकी छान-बीनसे शुरू होता है।

मूल्य

माल उसे कहते हैं जिससे मनुष्यकी कोई जरूरत पूरी होती हो; इसके सिवा माल उसे कहते हैं जिसके बदलेमें कोई और चीज मिल सके। किसी वस्तुकी उपयोगितासे उसका उपयोग-मूल्य (अथवा केवल मूल्य) सबसे पहले एक अनुपातके रूपमें आता है। यह अनुपात एक तरहके कुछ उपयोग-मूल्योंसे दूसरी तरहके कुछ उपयोग-मूल्योंके विनिमयमें होता है। इस तरहके लाखों-करोड़ों विनिमयोंसे दैनिक जीवन हमें बताता है कि तमाम तरहके उपयोग-मूल्य जो परस्पर भिन्न और एक दूसरेके समकक्ष नहीं है, एक दूसरेके बराबर कर दिये जाते हैं। सामाजिक सम्बन्धोंकी किसी निश्चित व्यवस्थामें इन तरह-तरहकी चीजोंमें समान वस्तु क्या है, जो बराबर एक दूसरेसे नापी-तौली जाती है? उनमें समानता यह है कि वे श्रमकी उपज हैं। इस तरहकी वस्तुओंका विनिमय करनेमें लोग अत्यंत भिन्न-भिन्न कोटिके श्रमका समतुलन करते हैं। वस्तुओंका उत्पादन सामाजिक सम्बन्धोंकी ऐसी व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति उत्पादक विभिन्न वस्तुओंका उत्पादन करते हैं (श्रमका सामाजिक विभाजन), और जिसमें इन सभी वस्तुओंको विनिमयमें एक दूसरेके बराबर रखा जाता है। फलतः इन सभी वस्तुओंमें जो तत्व समान रूपसे है, वह उत्पादनके किसी विशेष विभागका स्थूल श्रम नहीं है, न किसी विशेष प्रकारका श्रम है, वरन् सूक्ष्म मानव-श्रम है, साधारण रूपमें मानव-श्रम। सभी वस्तुओंके सम्पूर्ण मूल्यके रूपमें किसी भी समाजकी सम्पूर्ण श्रम-शक्ति एक ही मानवीय श्रम-शक्ति है। विनिमयके लाखों-करोड़ों कार्योंसे यह सिद्ध होता है। फलतः प्रत्येक वस्तु श्रमके उस समयके एक अंशका ही प्रतिरूप है जो सामाजिक दृष्टिसे आवश्यक होता है। किसी उपयोग-मूल्यके, या किसी वस्तुके उत्पादनके लिये सामाजिक दृष्टिसे श्रमका जो समय आवश्यक है, या सामाजिक दृष्टिसे श्रमकी जितनी मात्रा आवश्यक है, उसीसे मूल्यकी महत्ता आँकी जा सकती है।

“.. जब भी विनिमय द्वारा मूल्योंके रूपमें हम विभिन्न वस्तुओंका

सन्तुलन करते हैं तब इस क्रियासे ही मानवीय श्रमके रूपमें उन पर व्यय किये हुए विभिन्न प्रकारके श्रमका भी सन्तुलन करते हैं। हम इस व्यापारके प्रति सजग नहीं होते, फिर भी उसे करते हैं।" (मार्क्स : "पूँजी"—भाग १)

जैसा कि पहलेके एक अर्थशास्त्रीने कहा था, मूल्य दो व्यक्तियोंके बीचका सम्बन्ध है; केवल उसे यह भी जोड़ देना चाहिये था कि यह सम्बन्ध एक भौतिक आवरणके भीतर है। मूल्य क्या है,—इसे हम तभी समझेंगे जब हम उसे किसी भी ऐतिहासिक प्रकारके समाजमें सामाजिक उत्पादन-सम्बन्धोंकी व्यवस्थाके रूपमें देखें, और ऐसे उत्पादन-सम्बन्धोंकी व्यवस्थाके रूपमें जो सामूहिक रूपमें प्रकट होते हैं, जहाँ विनिमय-चक्रके लाखों-करोड़ों आवर्तन होते हैं। (मार्क्स : "पूँजी"— भाग १)

"मूल्योंके रूपमें, सभी वस्तुएँ केवल जड़ीभूत श्रम-समयके निश्चित मान हैं।" (मार्क्स : अर्थशास्त्रकी समालोचना)

वस्तुओंमें निहित श्रमकी दोहरी विशेषताका सांगोपांग विश्लेषण करके मार्क्सने मूल्य और अर्थके रूपका विश्लेषण किया है। उनका मुख्य कार्य मूल्यके अर्थ-रूपके उद्‌गमका अध्ययन करना है; विनिमयके विकासके ऐतिहासिक क्रमका अध्ययन करना है। इस विकास-क्रममें सबसे पहले वह विनिमयके इक्का-दुक्का, अलग-अलग कार्योंको लेते हैं ("साधारण, विलग आकस्मिक मूल्य-रूप", जिसमें किसी वस्तुकी एक मात्राका दूसरी वस्तुकी एक निश्चित मात्रासे विनिमय किया जाता है)। इसके बाद वह मूल्यके सार्वजनीन रूपकी ओर बढ़ते हैं, जिसमें कई भिन्न-भिन्न वस्तुओंका एक ही वस्तुसे विनिमय होता है। अंतमें वह मूल्यके अर्थ-रूपका विवेचन करते हैं जहाँ स्वर्ण ही यह विशेष वस्तु और सार्वजनीन रूपका साधन बन जाता है। विनिमयके विकास और वस्तुओंके उत्पादनकी उच्चतम उपज होनेके कारण, मुद्रा व्यक्तिके श्रमकी सामाजिकता पर पर्दा डालती है और उसे छिपाती है; वह विभिन्न उत्पादकोंके सामाजिक बन्धनको छिपाती है जो बाजारके कारण एक दूसरेके पास आते हैं। मार्क्सने अर्थके विभिन्न रूपोंका विस्तृत ढंगसे विश्लेषण किया है। इस बातकी ओर ध्यान देना आवश्यक है कियहाँ (और साधारणतः "पूँजी" के आरम्भके

...उपादान) जो व्यवस्थाकी सूक्ष्म और कम-ज्यादा केवल निष्कर्ष-प्रधान पद्धति मालूम होता है, वह उत्पादनके विनिमय और वस्तुओंके उत्पादनके विकासके ऐतिहासिक सम्बन्धके साथ के विशाल संकलनका प्रतिरूप है।

"...मुद्रा पर हम विचार करें, तो उसके अस्तित्वसे वस्तुओंके विनिमयकी एक निश्चित अवस्था साबित होती है। मुद्राके जो विशद उपयोग हैं, चाहे वस्तुओंके बराबरके धनके रूपमें, चाहे प्रवाहके साधनके रूपमें, अदा देनेके लिये, चाहे जोड़े हुए धनके रूपमें और सार्वजनीन सिक्केके रूपमें,—इन उपयोगोंसे एकाधिक उपयोगके प्रसार और उनके न्यूनाधिक प्राधान्यके अनुरूप, सामाजिक उत्पादन-क्रममें बहुत ही भिन्न कोटियों अवस्थाओंका पता लगता है।" (मार्क्स : "पूंजी"—भाग १)

अतिरिक्त मूल्य

मालका परिचालनमें एक अवस्था ऐसी आती है जब पैसा पूंजीमें बदल जाता है। मालके आदान-प्रदानका सूत्र था, माल-पैसा-माल, अर्थात् एक तरहका माल खरीदनेके लिये दूसरा तरहका माल बेचना। लेकिन इसके विपरीत पूंजीका साधारण सूत्र है पैसा-माल-पैसा अर्थात् (मुनाफे पर) बेचनेके लिये खरीदना। जो पैसा आदान-प्रदानके लिये निकाला जाता है, उसकी असली कीमतके ऊपर जो बढ़ना होता है, उसे मार्क्सने "अतिरिक्त मूल्य" का नाम दिया है। पूँजीवादी समाजमें पैसेकी इस "बढ़ती" को सभी लोग जानते हैं। वास्तवमें यह "बढ़ती" ही एक विशेष इतिहास द्वारा निश्चित उत्पादनके सामाजिक सम्बन्धके रूपमें पैसेको पूँजीमें परिवर्तित करती है। वस्तुओं के आदान-प्रदानसे अतिरिक्त मूल्य नहीं उत्पन्न हो सकता, क्योंकि इसमें केवल बराबरकी चीजोंका विनिमय होता है कीमतोंके बढ़नेसे भी इसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती क्योंकि खरीदने और बेचनेवालोंका परस्पर हानि-लाभ बराबर हो जायगा। और यहाँ पर हमारा विषय इक्का-दुक्का घटनाओंसे सम्बन्धित न होकर सामूहिक रूपसे औसत सामाजिक घटनाक्रमसे है। अतिरिक्त मूल्य पानेके लिये "थैलीशाहोंको...बाजारसे ऐसा माल मिलना ही चाहिये जिसके उपयोग-मूल्यमें यह विशेष गुण है कि वह मूल्यका उद्गम

है।" यह ऐसा माल होता है जिसका प्रत्यक्ष उपयोग-क्रम मूल्यका भी निर्माण-क्रम है। ऐसे मालका अस्तित्व है। वह है मनुष्यकी श्रम-शक्ति। उसका उपयोग श्रम है और श्रमसे मूल्य बनता है। पैसेवाला श्रम-शक्तिको उसके मूल्य पर खरीद लेता है। हर मालके मूल्यकी तरह श्रम-शक्तिका मूल्य भी उसके उत्पादनके लिये सामाजिक रूपसे आवश्यक श्रमके समय द्वारा (अर्थात् मजदूर और उसके परिवारके भरण-पोषणके लिये आवश्यक धन द्वारा) निश्चित होता है। श्रम-शक्तिको खरीद लेनेके बाद पैसेवालेको हक़ होता है कि वह उसका उपयोग करे यानी उसे दिनभर—मान लीजिये बारह घंटे—काममें लगाये रहे। इसी बीच छः घंटोंमें ही (आवश्यक श्रम-समयमें) मजदूर इतना उत्पादन कर लेता है जिससे उसके भरण-पोषणका खर्च निकल सके। इसके बादके छः घंटोंमें ("अतिरिक्त" श्रम-समयमें) वह "अतिरिक्त" माल या अतिरिक्त मूल्य पैदा करता है जिसके लिये पूँजीपति उसे कुछ नहीं देता। इसलिये उत्पादन-क्रमके विचारसे हमें पूँजीके दो भागोंमें भेद करना चाहिये; पहला, स्थिर पूँजी (कॉन्स्टेंट कैपिटल) जो उत्पादनके साधनोंपर मशीनों, औजारों, कच्चे माल वगैरा पर खर्च की जाती है, जिसका मूल्य (एकबारगी अथवा क्रमशः) बिना किसी परिवर्तनके तैयार मालमें बदल दिया जाता है; दूसरी, अस्थिर पूँजी (वेरियेबल कैपिटल) जो श्रम-शक्ति पर खर्च की जाती है। इस अस्थिर पूँजीका मूल्य एकसा नहीं रहता वरन् श्रम करनेके साथ बढ़ता है और अतिरिक्त मूल्यका निर्माण करता है। इसलिये पूँजी द्वारा श्रम-शक्तिके शोषणका हिसाब करनेके लिये हमें अतिरिक्त मूल्यकी तुलना संपूर्ण पूँजीसे नहीं वरन् केवल अस्थिर पूँजीसे करनी चाहिये : इस प्रकार ऊपरके उदाहरणमें, अतिरिक्त मूल्यकी दर—जैसा कि मार्क्सने इस सम्बन्धका नामकरण किया है—छः छः के अनुपातमें, अर्थात् शतप्रतिशत होगी।

पूँजीकी उत्पत्तिके लिये ऐतिहासिक आवश्यकताएँ इस प्रकार हैं। पहले, साधारण रूपसे वस्तुओंके उत्पादनके अपेक्षाकृत उच्च विकासकी परिस्थितियोंमें व्यक्तियोंके हाथोंमें काफी धनका इकट्ठा हो जाना; दूसरे, ऐसे मजदूरोंका अस्तित्व जो दो अर्थोंमें "स्वाधीन" हैं,—अपनी श्रम-शक्तिके बेचनेमें किसी तरहकी बाधा, या नियंत्रणसे स्वाधीन और धरती या साधारण रूपसे उत्पादनके साधनोंसे

स्थापना, अर्थात् सर्वहारा मजदूरोंका अस्तित्व, उन "सर्वहारा" लोगोंका अस्तित्व जो अपना श्रम-शक्तिको बेचे बिना अपना अस्तित्व बनाये नहीं रख सकते।

अतिरिक्त मूल्यको बढ़ानेके दो प्रधान मार्ग हैं—मजदूरीके घंटे बढ़ानेसे (निरपेक्ष अतिरिक्त मूल्य), और आवश्यक घंटे कम करनेसे (सापेक्ष अतिरिक्त मूल्य)। पहले मार्गका विश्लेषण करते हुए मार्क्सने एक प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत किया, कि मजदूरोंने काम घटानेके लिये कैसे संग्राम किया और (चौदहवीं सदीसे उन्नीसवीं सदी तक) सरकारने मजदूरीके घंटे बढ़ानेके लिये और उन्हें घटानेके लिये (उन्नीसवीं सदीमें फैक्टरी-विधान) हस्तक्षेप किया। पूंजीके प्रकाशित होनेके बाद सभ्य देशोंके मजदूर-आंदोलनका इतिहास इस चित्रको भरनेके लिये काफी मसाला देता है।

सापेक्ष अतिरिक्त मूल्यका विश्लेषण करते हुए मार्क्सने उस हलकी तीन प्रधान और ऐतिहासिक मंजिलोंकी जांच की जिनसे पूंजीवादने श्रमकी उत्पादकता-को बढ़ाया है,—(१) साधारण सहयोग, (२) श्रम-विभाजन, और कारखानोंमें उत्पादन, (३) मशीनें और बड़े पैमाने पर उद्योग-धन्धे। मार्क्सने जिस गंभीरतासे पूंजीवादी विकासके आधारभूत और विशेष लक्षणोंको प्रकट कर दिया है, वह इस बातसे मालूम हो जाता है कि रूस के तथाकथित कुस्तार (घरेलू) उद्योग-धंधोंकी खोजसे पहली दो मंजिलोंका निदर्शन करनेके लिये ढेर सारा सामग्री मिल जाती है। १८६७ में मार्क्सने बड़े पैमानेके मशीनवाले उद्योग-धंधोंके क्रान्तिकारी प्रभावका वर्णन किया था, वह कई "नये" देशोंमें, जैसे रूस, जापान आदिमें, पिछले पचास सालमें स्पष्ट हो गया है।

लेकिन पूर्व प्रसंगकी ओर लौटिये। मार्क्सने पूंजीके संचयका जो विश्लेषण किया है—अर्थात् अतिरिक्त मूल्यके एक भागका पूंजीमें परिवर्तन और इस भागका पूंजीपतिका अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओंकी पूर्ति या इच्छापूर्तिके लिये उपयोग न करके उसे अधिक उत्पादनमें लगाना—वह अत्यन्त महत्वपूर्ण और मौलिक है। मार्क्सने पहलेके पुरातन-पंथी अर्थशास्त्रकी (ऐडम स्मिथसे लगाकर) भ्रमपूर्ण धारणाओंको बताया था जिनके अनुसार सभी अतिरिक्त मूल्य, जो पूंजीमें परिवर्तित होता था, अस्थिर पूंजी बन जाता

था। वास्तवमें वह अस्थिर पूंजी तथा उत्पादनके साधनोंमें बँट जाता है। पूंजीके संपूर्ण भण्डारमें अस्थिर पूँजीकी अपेक्षा स्थिर पूँजीका ज्यादा तेजीसे बढ़ना पूँजीवादके विकासक्रममें और पूँजीवादसे समाजवादके परिवर्तन-क्रममें अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

पूँजीके सञ्चयसे मशीनोंका मजदूरोंकी जगह लेनेका काम तेजीसे बढ़ चलता है; एक सिरेपर सम्पत्ति इकट्ठी होती है तो दूसरी ओर निर्धनताका राज होता है। इस प्रकार पूंजीके संचयसे तथाकथित "मजदूरोंकी रिजर्व फौज" पैदा होती है, मजदूरों का "अपेक्षाकृत बाहुल्य" अथवा "जनसंख्याकी पूँजीवादी अतिवृद्धि" होती है। इसके अनेक और विभिन्न रूप होते हैं और इससे उत्पादनको अभूतपूर्व शीघ्रतासे बढ़ानेके लिये पूँजीको एक अवसर मिलता है। हम इस बातको ध्यानमें रखें और उसके साथ उधार पानेकी सुविधाओं और उत्पादनके साधनोंमें पूंजीके संचयको भी ध्यानमें रखें तो हमें और बातके साथ वह कुंजी मिल जाती है जिससे पूँजीवादी देशोंमें समय-समयपर होनेवाले अति-उत्पादनके संकटोंको हम समझ सकते हैं। ये संकट औसतन पहले प्रायः प्रति दस वर्षमें होते हैं, बादमें बीचका समय ज्यादा लम्बा और अनिश्चित हो जाता है। पूँजीवादी आधारपर जो पूँजीका संचय होता है, उससे हमें तथाकथित "आदिम संचय" का भेद करना चाहिये, जिसमें उत्पादनके साधनसे मजदूर बरबस हटा दिया जाता है, किसान जमीनसे भगा दिये जाते हैं, पंचायती जमीन चुरा ली जाती हैं, औपनिवेशिक व्यवस्था और राष्ट्रीय कर्ज, व्यापार-रक्षाके विशेष नियमों, आदि का जन्म होता है। "आदिम सञ्चय" से एक ओर "स्वाधीन" सर्वहाराका निर्माण होता है; दूसरी ओर पैसेके स्वामी पूँजीपतिका।

मार्क्सने "पूँजीवादी संचयकी ऐतिहासिक प्रवृत्ति" को बड़े सुन्दर ढंगसे व्यक्त किया है:

> "तात्कालिक उत्पादकोंकी निर्मम दस्युतासे, और अति निम्न कोटिका, जघन्य, क्षुद्र और पतित आकांक्षाओंकी प्रेरणासे लूट-खसोट की गयी थी। स्व-अर्जित व्यक्तिगत सम्पत्तिका आधार, कहना चाहिये, एकान्त और स्वच्छन्द श्रमशील व्यक्ति और उसके श्रमकी परिस्थितिय

स्वतंत्र उत्पादक था: उसकी जगह पूँजीवादी व्यक्तिगत सम्पत्ति ले लेती है जो दूसरोंके नाममात्रको स्वाधीन श्रमपर, अर्थात् पैसोंकी मजूरीपर, निर्भर है।...अब जिसे लूटना है, वह अपने लिये काम करनेवाला मजदूर नहीं है वरन् बहुतसे मजदूरोंका शोषण करनेवाला पूँजीपति है। यह कार्य पूँजीवादी उत्पादनके निहित नियमोंकी क्रियासे, पूँजीके केन्द्रीकरणसे सम्पन्न होता है। एक पूँजीपति हमेशा कई औरोंकी जान मारता है। इस केन्द्रीकरण अथवा कुछ पूँजीपतियों द्वारा बहुतोंके लूटे जानेके साथ-साथ नित बढ़ते हुये पैमाने पर, श्रमका सहकारिता वाला रूप भी बदल जाता है, विज्ञानका जानबूझकर धन्धोंमे प्रयोग होता है, धरतीमें नियम-पूर्वक खेती होने लगती है, श्रम-साधनोंका ऐसे श्रम-साधनोंमे परिवर्तन हो जाता जो सामूहिक रूपसे ही प्रयुक्त हो सकें, साथ ही संयुक्त समाजगत श्रमके उत्पादन-साधनोंके रूपमें सभी उत्पादन-साधनोंका उपयोग करके उनमें नुकसान कम हो जाता है, दुनियाके बाजारके जालमें सभी लोग फँस जाते हैं और इसके साथ पूँजीवादी शासनकी अन्तर्राष्ट्रीयता बढ़ती जाती है। पूँजीशाहों की संख्या—जो इस परिवर्तन-क्रमके सभी लाभों को हथियाकर उनपर अपना एकाधिकार कर लेते हैं—जैसे-जैसे लगातार कम होती जाती है, वैसे-वैसे ही दैन्य, अत्याचार, दासता, पतन और शोषणमें वृद्धि होती है। परन्तु इसके साथ उस मजदूर-वर्गका विद्रोह भी बढ़ता जाता है जिसकी संख्या लगातार बढ़ती जाती है, और जिसमें पूँजीवादी उत्पादन-क्रमके कल-पुर्जोंसे ही अनुशासन, एकता और संगठन उत्पन्न होता है। पूँजीका एकाधिकार उस उत्पादन-पद्धतिके लिये शृंखला बन जाता है जो उसके साथ और उसकी आधीनतामें पनपी और फली-फूली थी। उत्पादनके साधनोंका केन्द्रीकरण और श्रमका समाजीकरण एक ऐसे बिन्दुपर जा पहुंचता है जहाँ पूँजीवादी खोलमें उनका रहना असम्भव हो जाता है। वह खोल फट जाता है। पूँजीवादी व्यक्तिगत सम्पत्तिकी अन्तिम घडी आ पहुँचती है। लुटेरोंका अन्त हो जाता है।”

(मार्क्स : “पूँजी”—भाग १, अध्याय ३२)

कुल मिलाकर “पूँजी” के दूसरे खंडमें मार्क्सका सामाजिक पूँजीके

पुनरुत्पादनका विश्लेषण अतिशय महत्वका है और बिल्कुल नया है। यहाँ भी मार्क्सने किसी विलग घटनाकी चर्चा न करके एक सामूहिक घटनाक्रम पर विचार किया है; उन्होंने समाजकी आर्थिक व्यवस्थाके किसी अंश पर नहीं, वरन् इस सम्पूर्ण व्यवस्थापर ही विचार किया है। पुरातन-पंथी अर्थशास्त्रियों की उपरोक्त भूलको सुधारते हुए मार्क्सने समूचे सामाजिक उत्पादनको दो बड़े भागोंमें बाँटा है : उत्पादनके साधनोंका उत्पादन और काममें लानेकी वस्तुओं का उत्पादन। अंकों द्वारा उदाहरण देते हुए उन्होंने समूची सामाजिक पूँजीकी—जब अपने पिछले अनुपात-क्रमसे उसका पुनरुत्पादन होता है और जब उसका केन्द्रीकरण होता है, दोनों दशाओं में विस्तृत परीक्षा की है। "पूँजी" के तीसरे भागमें यह समस्या सुलझायी गयी है कि मूल्यके नियमके आधारपर मुनाफेकी औसत दर कैसे बनती है। आर्थिक विज्ञानमें एक बहुत बड़ी प्रगति यह है कि मार्क्सने सामूहिक अर्थ सम्बन्धी घटनावलीको ध्यानमें रखकर अपना विश्लेषण किया है, न कि इक्का-दुक्का घटनाओंको लेकर या प्रतियोगिताके बिल्कुल छिछले पहलुओंको लेकर। इस तरहका संकुचित दृष्टिकोण निम्न कोटिके अर्थशास्त्रमें और उस समयके "अवशिष्ट उपयोगके सिद्धान्त" (थियरी ऑफ मार्जिनल यूटिलिटी) में मिलता है। पहले मार्क्सने अतिरिक्त मूल्यके उद्गमका विश्लेषण किया है, उसके बाद वह लाभ, ब्याज और लगान (ग्राउंड रेण्ट) के रूपमें उसके विभाजन पर विचार करते हैं। अतिरिक्त मूल्य तथा किसी काममें लगायी हुई समस्त पूँजीके अनुपातका नाम लाभ है। जिस पूँजीमें "सुदृढ़ सम्बद्धता" होती है (अर्थात् जिसमें सामाजिक औसतसे ऊपर अस्थिर पूँजीसे स्थिर पूँजी ज़्यादा होती है) उससे मुनाफेका औसतसे कम दर मिलता है। जिस पूँजीमें "शिथिल सम्बद्धता" होती है, उससे मुनाफेकी औसतसे ज़्यादा दर मिलती है। पूँजीपति उत्पादनके एक विभागसे पूँजीको हटाकर उसे दूसरे विभागमें लगानेके लिये स्वच्छन्द हैं; उनकी परस्पर प्रतियोगितासे दोनों ही दशाओंमें मुनाफेकी दर कम होकर औसतपर आ जाता है। किसी भी समाजमें सभी वस्तुओंका कुल मूल्य सभी वस्तुओंकी कुल कीमत (प्राइसेज) के बराबर होता है। लेकिन अलग-अलग कारबारमें और उत्पादनके अलग-अलग विभागोंमें स्पर्धाके

फल स्वरूप वस्तुओंका दाम उनके मूल्यके अनुसार नहीं होता वरन् उत्पादनकी कीमतोंके अनुसार होता है। ये कीमतें लगाई हुई पूँजी और औसत मुनाफेके जोड़के बराबर होता है।

इस प्रकार मार्क्सने मूल्य सम्बन्धी नियमके पूर्णतया अनुरूप ही इस बातकी व्याख्या की है कि दामों और मूल्यमें जो प्रसिद्ध और अनिवार्य भेद है, वह क्यों होता है और मुनाफेमें समानता क्यों होती है। फिर भी मूल्य (जो सामाजिक होता है) और कीमत (जो अलग-अलग होती है) का परस्पर सामंजस्य सीधे साधारण ढंगसे नहीं होता वरन् उसका क्रम बहुत ही हेर-फेर लिये होता है। इसलिये पण्य-समाजमें जहां मालके पैदा करनेवाले अलग-अलग हों, और जिनका सम्बन्ध बाजारसे ही होता हो यह स्वाभाविक है कि नियमोंकी अनुरूपता एक औसत, आम और सामूहिक नियम-पालनके रूपमें प्रकट हो, जिसमें कभी इधर और कभी उधर होनेवाली पथ-विच्युति एक दूसरेकी कमाई पूरा करे।

श्रमकी उत्पादनशीलताके बढ़नेका अर्थ है अस्थिर पूँजीके मुकाबले स्थिर पूँजीकी और भी तेज बढ़ती। अतिरिक्त मूल्यका सम्बन्ध अस्थिर पूँजीसे ही होता है, इसलिये यह स्पष्ट है कि मुनाफेकी दरमें (अतिरिक्त मूल्य तथा सम्पूर्ण पूँजी, न कि पूँजी अस्थिर ही, के अनुपातमें) गिरनेकी प्रवृत्ति होती है। मार्क्सने इस प्रवृत्ति और इसके अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियोंकी विस्तृत छान-बीन की है। "पूँजी" के जिस अत्यंत रोचक तीसरे भागमें महाजनी पूँजी, व्यापारी पूँजी और आर्थिक पूँजीकी विवेचना की गई है, उसका यहां पर विवरण न देकर मैं उस भाग के सबसे महत्वपूर्ण विषय 'लगान' को लूंगा। जमीन सीमित होनेसे और पूँजीवादी देशोंमें सारी जमीन पर अलग-अलग मालिकोंका व्यक्तिगत स्वामित्व होनेसे, खेतीकी पैदावारकी कीमत उत्पादनकी लागतसे निश्चित होती है। परन्तु इस उत्पादनका हिसाब औसत दर्जेकी जमीनको ध्यानमें रखकर नहीं लगाया जाता, उसका हिसाब मालको बाजार ले आनेकी औसत परिस्थितियोंको ध्यानमें रखकर नहीं लगाया जाता, वरन् सबसे खराब धरती और सबसे अधम परिस्थितियोंको ध्यानमें रखते हुए यह हिसाब लगाया जाता है। इस कीमतसे अच्छी जमीन (या अच्छी

परिस्थितियों) के उत्पादनको कीमतका जो अन्तर होता है, वह बीचका लगान कहलाता है। इसका विस्तृत विश्लेषण करते हुए और यह दिखाते हुए कि खेतोंकी उर्वरतामें परिवर्तन होनेसे और धरतीपर पूँजीकी जो मात्रा लगायी जाती है, उसके साथ-साथ यह उत्पन्न होता है, मार्क्सने पूरी तरह रिकार्डोकी भूलको प्रकट कर दिया है जिसका विचार था कि बीचका लगान तभी मिलता है जब अच्छीसे बुरी धरतीकी ओर क्रमशः संक्रमण होता है। ("थियोरियेन ऊबेर देन मेरवर्ट"—"अतिरिक्त मूल्यके सिद्धान्त" भी देखिये जिसमें रौडबर्टसके मत को समालोचना विशेष ध्यान देने योग्य है।) इसके विपरीत कृषि-विद्या में उन्नति होनेसे, नगरोंकी वृद्धि आदि कारणोंसे प्रतिकूल संक्रमण हो सकते हैं, धरतीकी एक श्रेणी बदल कर दूसरी हो सकती है। "धरतीकी नित-न्यून उर्वरताका नियम" जो दुष्टतासे प्रकृतिपर पूँजीवादकी अपर्याप्ति, सीमाओं और असंगतिका दोषारोपण करता है, भारी भूल है। इसके सिवा सभी उद्योग-धन्धोंमें लाभकी समानता और साधारण रूपसे राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था पहलेसे ही प्रतियोगिता करनेकी स्वाधीनताको, एक धन्धेसे दूसरे धन्धेमें पूँजीकी स्वतंत्र गतिको मान लेती है। परन्तु भूमिपर व्यक्तिगत स्वामित्व, एकाधिकारको जन्म देकर, इस स्वतंत्र गतिमें बाधक होता है। इस एकाधि-कारके कारण जहाँ पूँजीका शिथिल सम्बद्धता होती है और फलतः अलग-अलग मुनाफेकी ऊँची दर मिल सकती है, वहाँ खेतीकी पैदावारमें मुनाफेकी दर निर्द्वंद रूपसे बराबर नहीं की जा सकती। अपने हाथमें एकाधिकार रखनेसे जमींदार अपनी पैदावारकी कीमत औसतसे ऊँची रख सकता है और यह एकाधिकारसे निश्चित होनेवाली कीमत निरपेक्ष भूमिकरका उद्गम है। जब तक पूँजीवाद है, तब तक सापेक्ष भूमिकरका अन्त नहीं हो सकता। लेकिन निरपेक्ष भूमिकरका तो पूँजीवादके रहते हुए भी अन्त किया जा सकता है; उदाहरणके लिये भूमिको राष्ट्रकी सम्पत्ति बनाकर, भूमिके स्वामित्वके राज्यके हाथमें आ जानेसे। भूमि पर राष्ट्रका अधिकार होनेसे जमींदारोंके निजी एकाधिकारका अन्त हो जायगा। इसका फल यह होगा कि कृषिमें भी अधिक संगतरूपसे और अधिक पूर्णतासे मुक्त प्रतियोगिता चल सकेगी। इसीलिये, जैसा कि मार्क्सने कहा है, इतिहासमें उग्रमतके पूँजीपति बार-बार इस

प्रगतिशील पूँजीवादी माँगको लेकर आगे आये हैं कि भूमिपर राष्ट्रका अधिकार हो। लेकिन इनमें अधिकांश पूँजीपतियोंको डर लगता है क्योंकि यह एक दूसरे एकाधिकारको भी निकटसे "स्पर्श" करती है, जो आजकल विशेष रूपसे महत्वपूर्ण और 'कोमल' है—साधारण रूपसे उत्पादनके साधनों पर एकाधिकार। (एंगेल्सके नाम अपने २ अगस्त १८६२ के पत्रमें मार्क्सने मुनाफेकी औसत दर और निरपेक्ष भूमिकरके सिद्धान्तकी बहुत ही सरल, सुस्पष्ट और नपी-तुली व्याख्या की है।) भूमिकरके इतिहासके सम्बन्धमें मार्क्सके विश्लेषणकी ओर ध्यान देना आवश्यक है। मालिककी जमीन पर काम करके जब किसान अतिरिक्त पैदावारका उत्पादन करता है, तब श्रम-कर वस्तु या धान्यका रूप धारण कर लेता है, क्योंकि अपनी ही भूमिपर अतिरिक्त पैदावारका उत्पादन करके किसान उसे "आर्थिकसे इतर नियंत्रण" द्वारा बाध्य होकर जमीनके मालिकको सौंप देता है। इसके बाद यह वस्तु-कर अर्थ-करमें परिवर्तित होता है क्योंकि माल-उत्पादनकी व्यवस्थाके कारण पैदावारके रूपमें जो कर था, उसीको कीमत मुद्रामें निश्चित कर दी जाती है। अन्तमें वह पूँजीवादी करमें परिवर्तित होता है जब किसानकी जगह वह पूँजीपति आ जाता है जो पैसे पर मजूरी करनेवालोंकी सहायतासे खेती करता है। "पूँजीवादी भूमिकरकी उत्पत्ति" के विश्लेषणके साथ-साथ कृषिमें पूँजीवादके विकासके सम्बन्धमें मार्क्सने कुछ बड़े मार्केके विचार प्रकट किये थे, उनपर भी ध्यान देना चाहिये। रूस जैसे पिछड़े हुए देशोंपर वे विशेष रूपसे लागू होते हैं।

"अपनेको मजूरी पर उठा देनेवाले, दिनमें काम करनेवाले, संपत्तिहीन मजदूरोंका वर्ग बननेके साथ-साथ ही नहीं, उसके पहले भी, धान्यरूपमें कर अर्थ-करमें बदल ही जाता है। उनके इस अभ्युदय-कालसे, जब यह वर्ग जहाँ-तहाँ अनियमित ढगसे प्रकट होता है, तो यह प्रथा भी अवश्य चल पड़ती है कि अच्छी स्थितिके कर देने वाले किसान अपने लाभके लिये खेतिहर मजूरोंका शोषण करते हैं, जैसे कि सामन्त-युगमें धनी दास अपने लाभके लिये दासोंसे काम लेते थे। इस प्रकार वे धीरे-धीरे इस योग्य बन जाते हैं कि कुछ धन इकट्ठा कर सकें और अपनेको भावी पूँजीपतियोंमे परिवर्तित कर

सकें। इस प्रकार स्वयं खेती करने वाले पुराने भू-स्वामियोंके भीतर ही पूँजीवादी काश्तकारोंके लिये परिस्थितियाँ तैयार होती हैं। इन काश्तकारोंका विकास खेतिहर इलाकोंके बाहरके पूँजीवादी उत्पादनके विकासपर निर्भर होता है।" (मार्क्स: "पूँजी"—भाग ३)

"खेतिहरोंके एक भागके लूट लिये जानेसे और उनके बेदखल होनेसे औद्योगिक पूँजीके लिये मजदूर, उनकी जीविकाके साधन, और श्रमके लिये सामान ही खाली नहीं हो गया वरन् उससे घरका बाजार भी बना।" (मार्क्स: "पूँजी"—भाग १)

इसके बाद खेतिहर जनताकी गरीबी और तबाहीसे पूँजीके लिये मजदूरों की रिजर्व फौज बनती है। हर पूँजीवादी देशमें :

"......खेतिहर जनताका एक भाग शहरके या कारखानेमें काम करनेवाले सर्वहारा वर्गमें परिवर्तित होनेकी सीमापर सदा ही तयार रहता है।..... (कारखानोंसे यहां सभी गैर-खेतिहर धन्धोंसे मतलब है।) इस प्रकार अपेक्षाकृत अतिरिक्त जनसंख्याका यह स्रोत अजस्र बहा करता है। ..इसलिये खेतिहर मजूरको कमसे कम पैसा मिलता है और उसका एक पैर निराश्रयताके दलदलमें बना ही रहता है।"(उपरोक्त)

जिस भूमिको किसान जोतता-बोता है, उसपर उसका व्यक्तिगत स्वामित्व ही छोटे पैमानेके उत्पादनका आधार है और इस उत्पादनकी बढ़ती पूर्व-विकासके लिये आवश्यक है। परन्तु इस तरहका छुटपुंजिया उत्पादन समाज और उत्पादन के संकुचित और पुराने ढाँचेमें ही सम्भव है। पूँजीवादने किसानोंके,

"शोषणका केवल रूप ही औद्योगिक सर्वहारा वर्गके शोषणसे भिन्न है। शोषक एक ही है : पूँजी। अलग-अलग पूँजीपति रेहन और व्याजसे अलग-अलग किसानोंका शोषण करते हैं; पूँजीवादी वर्ग राजकीय करों द्वारा किसानोंका शोषण करता है।" (मार्क्स: "फ्रांसमें वर्ग-संघर्ष")

"अब किसानकी थोड़ीसी जमीन उससे मुनाफा, व्याज और लगान लेनेके लिये पूंजीपतिके पास बहाने भरका काम देती है; जमीनसे

किसान अपनी मेहनत कैसे वसूल करता है, यह जिम्मा उसका है।"
(मार्क्स :—"लुई बोनापार्टकी अठारहवीं ब्रूमेअर")

किसान अपनी कमाईका एक भाग नियमित रूपसे पूँजीवादी समाजको अर्थात् पूँजीवादी वर्गके हवाले कर देता है और "निजी स्वामित्वके बहाने आखिर काश्तकारके दर्जे तक पहुँच जाता है।" ऐसा क्यों होता कि "जिन देशोंमें छोटे-छोटे काश्तकारोंकी संख्या अधिक होती है, वहाँ पूँजीवादी-उत्पादन-पद्धति वाले देशोंकी अपेक्षा अनाजकी कीमत कम होती है?" ("पूँजी"—भाग ३)

इसका उत्तर यह है कि अपनी अतिरिक्त पैदावारका एक भाग किसान समाजको (अर्थात् पूँजीवादी वर्गको) यों ही दान कर देता है।

(अनाज और खेतोंमें पैदा होनेवाली दूसरी चीजोंकी) "यह कम कीमत उत्पादकोंकी निर्धनताका ही परिणाम है और उनके श्रमकी उत्पादकताका परिणाम किसी भी तरह नहीं है।" (उपरोक्त)

पूँजीवादमें छुटपुँजिया खेती, जो छुटपुँजिया उत्पादनका रूप है, निर्जीव होकर मुरझा जाती है और समाप्त हो जाती है।

"छोटे किसानोंकी सम्पत्ति स्वभावसे ही इस संभावनाको दूर रखती है कि श्रमके उत्पादनकी सामाजिक शक्तियोंका विकास हो, श्रमके सामाजिक रूप हों, पूँजीका सामाजिक केन्द्रीकरण हो, बड़े पैमाने पर गोरू पाले जायें और कृषिमें विज्ञानका अधिकाधिक उपयोग किया जाय।

"ब्याज और कर-व्यवस्थामें इसे हर जगह निर्धनताका सामना करना पड़ता है। जमीनकी कीमतमें पूँजीके खर्चके कारण खेतोंसे यह पूँजी खिंच आती है इसके साथ उत्पादनके साधनोंका विराट् ह्रास और स्वयं उत्पादकोंका अलगाव पैदा होता है।" (सहकारी-संस्थाएँ, अर्थात् छोटे किसानोंकी जमातें असाधारण रूपसे प्रगतिशील पूँजीवादी भूमिका पूरी करती हुई भी इस प्रवृत्तिको निर्बल बनाती हैं, उसका नाश नहीं करतीं। इसके सिवा यह न भूलना चाहिये कि ये सहकारी-संस्थाएँ खाते-पीते किसानोंके लिये बहुत कुछ करती हैं, और आम गरीब किसानोंके लिये बहुत कम, प्रायः कुछ नहीं करतीं। यह भी न भूलना चाहिये कि ये संस्थाएं स्वयं मजदूरोंकी शोषक से

[illegible]

जाती है।—लेनिन) "शक्तिका भारी अपव्यय भी होता है। उत्पादनकी परिस्थितियोंमे ह्रासकी निरन्तर वृद्धि और उत्पादनके साधनोंकी कीमतमें बढ़ती छोटे किसानोंकी सम्पत्तिका आवश्यक नियम है।" (उपरोक्त)

उद्योग-धंधोंकी भाँति कृषिमें भी "उत्पादकोंकी शहादत" की कीमत देकर ही पूँजीवाद उत्पादन-क्रममें उन्नति करता है।

"खेतिहर मजूरोंके और बड़े-बड़े इलाकोंमे फैल जानेसे उनकी विरोध करनेकी शक्ति टूट जाती है जब कि केन्द्रीकरणसे शहरके कमकरोंकी शक्ति बढ़ती है। जैसे शहरके उद्योग-धंधोंमें, वैसे ही वर्तमान कृषिमें श्रम-शक्तिको ही नष्ट करने और रोगसे उसे खा जानेसे ही चालू श्रमकी बढ़ी हुई उत्पादकता और मात्रा खरीदी जाती है। इसके सिवा पूँजीवादी कृषिमें सभी उन्नति मजदूरोंको ही लूटनेकी नहीं, वरन् धरतीको भी लूटनेकी कलामें उन्नति है। इसलिये पूँजीवादी उत्पादन सभी तरहकी सम्पत्तिके मूल स्रोत—धरती और मजूर—को निचोड़ कर ही उद्योगसम्बंधी विज्ञानका विकास करती है और विभिन्न क्रमोंको एक ही सामाजिक क्रममें मिलाता है। (मार्क्स : "पूँजी"—भाग १)

समाजवाद

ऊपरकी बातोंसे स्पष्ट है कि मार्क्सने एकमात्र तत्कालीन समाजकी गतिके आर्थिक नियमके ही बल पर यह निष्कर्ष निकाला है कि पूँजीवादी समाज अनिवार्य रूपसे सोशलिस्ट समाजमें परिवर्तित हो जायगा। समाजवादके आगमनकी अनिवार्यताका मुख्य भौतिक आधार श्रमका समाजीकरण है जो अपने असंख्य रूपोंमे तीव्र और तीव्रतर गतिसे आगे बढ़ता रहा है। मार्क्सकी मृत्युके बादके पचास वर्षोंमें, बड़े पैमाने पर, उत्पादनके विकासमें, पूँजीवादके अन्तर्राष्ट्रीय संघों (कार्टेलों), पंचायतों (सिण्डीकेटों), और ट्रस्टोंमें, साथ ही आर्थिक पूँजी (फिनान्स कैपिटल) की सीमारेखाओं और शक्तिके अतिप्रसारमे विशेष स्पष्टतासे यह वृद्धि प्रकट होती रही है। इस परिवर्तनकी बौद्धिक और भावमूलक प्रेरक-शक्ति, उसको भौतिक रूपसे संपन्न करनेवाली शक्ति, सर्वहारा वर्ग है जिसे पूँजी-वादने ही शिक्षित किया है। पूँजीपतियोंसे सर्वहारा वर्गका संघर्ष नाना रूप धारण करता हुआ, जो नित भरेपूरे होते जाते हैं, अनिवार्यतः एक राजनीतिक

संघर्ष हो जाता है जिसका ध्येय सर्वहारा वर्ग द्वारा राजनीतिक शक्तिको जीतना होता है, ("सर्वहारा एकाधिपत्य")। उत्पादनके समाजीकरणसे उत्पादनके साधन समाजके हाथमें अवश्य आ जायेंगे और "आत्मसात् करनेवाले स्वयं आत्मसात् किये जायेंगे।" इस परिवर्तनका सीधा परिणाम यह होगा कि श्रमकी उत्पादकतामें विशाल वृद्धि होगी, मजूरीके घंटे कम होंगे, पुराने टुटपुंजिये और अलग-अलग उत्पादनके बदले सामूहिक (कलेक्टिव) और उन्नत श्रम होगा, अन्तमें पूँजीवाद, कृषि और उद्योग-धंधोंके सम्बन्धको तोड़ देता है; लेकिन साथही अपने उच्चतम विकासके होते-होते, वह दोनोंके बीचका सम्बन्ध स्थापित करनेके लिये नये सूत्र तैयार करता है। जानबूझकर विज्ञानके किये हुए उपयोग, सामूहिक श्रमके मेल और जनसंख्याके पुनर्वितरणके आधारपर वह कृषि और उद्योग-धंधोंको मिलाता है। (वह एक साथ ही देहातके अलगाव और अकेले-पनको, असभ्यता और बड़े-बड़े शहरोंमें विशाल जन-समूह के अस्वाभाविक केन्द्री-करणको समाप्त कर देता है।) आधुनिक पूँजीवादके उच्चतम रूप द्वारा कुटुम्ब के एक नये प्रकार, स्त्रियोंकी स्थिति और नयी पीढ़ीकी शिक्षा-दीक्षामें परिवर्तनकी तैयारी हो रही है। वर्तमान समाजमें स्त्रियों और बच्चों द्वारा मजदूरी, पूँजीवाद द्वारा दादा-पंथी कुटुम्बका नष्ट-भ्रष्ट होना, आवश्यक रूपसे बड़े ही भयावह, सर्वनाशी और जघन्य रूपोंमें प्रकट होते हैं। फिर भी

> "...वर्तमान उद्योग-धंधे घरके बाहर उत्पादन-क्रममें स्त्रियों, नौजवानों और बच्चोंको महत्वपूर्ण भाग देकर कुटुम्ब और स्त्री-पुरुषके सम्बंधके एक उच्चतर रूपके लिये एक आर्थिक आधारका निर्माण करते हैं। कुटुम्बके ट्यूटोनिक-ईसाई रूपको अचल और त्रिकाल-सत्य समझना वैसे ही भ्रमपूर्ण है जैसे प्राचीन रोम, ग्रीसके कुटुम्बको या कुटुम्बके पूर्वी रूपोंको ऐसा समझना। ये तो ऐतिहासिक विकासकी शृङ्खलाएँ हैं। यह भी स्पष्ट है कि सभी उम्रके स्त्री और पुरुष—दोनों ही तरहके व्यक्तियोंसे सामूहिक रूपमें काम करनेवाला गुट बनता है, इस बातसे अवश्य ही अनुकूल परिस्थितियोंमें उसे मानवीय-विकासका कारण बन जाना चाहिये।" ("पूँजी"—भाग १)

कारखानोंके चलनेसे "भविष्यकी शिक्षाके बीज," बोये जा रहे हैं,

"ऐसी शिक्षाके बीज, जो एक खास उम्रके बादके हर बच्चेके लिये उत्पादन-श्रमके साथ शिक्षा और व्यायामका मेल कर सकें, केवल इसलिये नहीं कि इससे उत्पादनके लिये बच्चेकी योग्यता बढ़ेगी वरन् इसलिये कि मनुष्योंके पूर्ण विकासका यही एक मार्ग है।" (उपरोक्त)

उसी ऐतिहासिक आधारपर,—भूतकाल पर प्रकाश डालनेके लिये ही नहीं वरन् दृढ़तासे देखनेके लिये भविष्यको और उसे चरितार्थ करनेके लिये, दृढ़तासे प्रत्यक्ष काम करनेके लिये, मार्क्सका समाजवाद जाति और राज्यकी समस्याओंकी विवेचना करता है। मजदूर-वर्गमें तब तक शक्ति और परिपक्वता नहीं आ सकती जब तक वह "अपनेको जाति (नेशन)" न बना ले, जब तक कि वह "जातीय (नेशनल)" न बने ("यद्यपि इस शब्दके पूंजीवादी अर्थमें नहीं")। परन्तु पूंजीवादके विकाससे जातियोंके बीचकी दीवारें अधिकाधिक ढहने लगती हैं, जातीय अलगाव दूर होता है और जातीय विरोधके बदले वर्ग-विरोधका जन्म होता है। इसलिये विकसित पूंजीवादी देशोंमें यह बिल्कुल सच है कि "कमकरोंका कोई देश नहीं है" और सभ्य देशोंमें मजदूरोंकी "संयुक्त कार्यवाही सर्वहारा वर्गकी मुक्तिकी पहली शर्तोंमें है" (कम्युनिस्ट-घोषणापत्र)। राज्य (स्टेट) संगठित हिंसाका नाम है, समाजके विकासकी एक अवस्थामें (जब वह ऐसे वर्गोंमें बट गया जिनमें समझौता न हो सके) अनिवार्यतः उसका जन्म हुआ जब बिना ऐसे "अधिकार" के जो समाजके ऊपर और किसी हद तक उससे परे हो, उसका अस्तित्व असम्भव था। वर्ग-सम्बन्धी असंगतियोंसे उत्पन्न होकर, यह राज्य

"सबसे शक्तिशाली और आर्थिक दृष्टिसे प्रधान वर्गका राज्य हो जाता है। यह वर्ग राज्यकी सहायतासे राजनीतिक दृष्टिसे भी प्रधान वर्ग बन जाता है। और इस प्रकार पीड़ित जनताको दबाने और उसका शोषण करनेके लिए उसे नये साधन मिल जाते हैं। इस प्रकार प्राचीन राज्य गुलामोंके मालिकोंका राज्य था जिससे गुलामोंको दबाया जा सके जैसे कि सामन्ती राज्य दास-कृषकोंको दबानेके लिये सरदार-वर्गका अस्त्र था, और जैसे कि वर्तमान प्रतिनिधिमूर्ण राज्य पूंजी द्वारा मजदूरोंके शोषणका अस्त्र है।" (एंगेल्स, "कुटुम्ब, व्यक्तिगत सम्पत्ति और राज्यसत्ताका जन्म," जिसमें लेखकने अपने और मार्क्सके विचारोंका प्रतिपादन किया है।)

यही स्थिति जनवादी प्रजातंत्रमें भी, सबसे स्वाधीन और प्रगतिशील पूँजीवादी राज्यमें भी है। अन्तर केवल रूपका होता है (सरकारका सम्बन्ध स्टॉक एक्सचेंजसे हो जाता है और अधिकारी वर्ग तथा प्रेसको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे घूस दे दी जाती है)।

"ड्यूरिंग मत-खण्डन" में एंगेल्सने लिखा है—

"राज्यका यह पहला काम, जब वह वास्तवमें पूर्ण समाजका प्रतिनिधि बनकर आता है और समाजके नामपर उत्पादनके साधनोंपर अधिकार कर लेता है, राज्यके नाते उसका अन्तिम स्वाधीन कार्य भी होता है। एक क्षेत्रके बाद दूसरेमें राज्यका सामाजिक सम्बन्धोंसे हस्तक्षेप व्यर्थ हो जाता है और उसके बाद बंद हो जाता है। वस्तुओंका शासन और उत्पादन-कर्मोंका निर्देश व्यक्तियोंकी सरकारी जगह ले लेता है। राज्यसत्ताका 'अंत नहीं किया जाता' वह स्वयं क्रमशः नष्ट हो जाती है।"

"उत्पादकोंके स्वतंत्र और समान सहयोगसे आधार पर जिस समाजको उत्पादनका पुनर्संगठन करना है वह समाज राज्य-सत्ताको पुरानी चीजोंके अजायब घरमें, चर्खे और पीतलकी कुल्हाड़ीके साथ रख देगा" ("परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति और राज्यकी उत्पत्ति")

अन्तमें छोटे किसानोंके सम्बन्धमें, जो आत्मसात् करने वालोंके आत्मसात् किये जानेके समय बने रहेंगे, मार्क्सीय समाजवादका दृष्टिकोण एंगेल्सके एक कथनसे प्रकट होता है जो मार्क्सके मतको व्यक्त करता है :—

"जब हमारे हाथमें राज्य-शक्ति आ जायगी, तब हम छोटे किसानोंको (मुआवज़ा देकर या बिना दिये) बलपूर्वक आत्मसात् करनेका स्वप्न भी न देखेंगे जैसा कि बड़े जमींदारोंके सम्बन्धमें हमें करना पड़ेगा। छोटे किसानोंमें हमारा सबसे पहला यह काम होगा कि बलपूर्वक नहीं वरन् उदाहरणोंसे और सामाजिक सहायता देकर उनके निजी उत्पादन और निजी स्वामित्वको सहकारी उत्पादन और सहकारी स्वामित्वमें परिवर्तित कर दें। उस समय छोटे किसानोंको इस परिवर्तनके लाभ दिखानेके लिये हमारे पास काफ़ी साधन होंगे और इन लाभोंको हमें उन्हें अभीसे

समझाना चाहिये।" (एंगेल्स—"फ्रान्स और जर्मनीमें कृषिकी समस्या", सबसे पहले "नोय त्साइट" में प्रकाशित)

सर्वहाराके वर्ग-संघर्षकी कार्यनीति

१८४४-४५ में ही यह पता लगाकर कि पहलेके भौतिकवादका एक मुख्य दोष यह था कि उसने प्रत्यक्ष क्रान्तिकारी कार्यवाहीकी परिस्थितियों और महत्त्वको न समझा था, मार्क्सने जीवन भर अपने सैद्धान्तिक कार्योंके साथ सर्वहाराके वर्ग-संघर्षकी कार्यनीतिकी समस्याओंकी ओर लगातार ध्यान दिया। मार्क्सके सभी ग्रंथोंमें, विशेषकर १९१३ में प्रकाशित एंगेल्सके उनके पत्र-व्यवहारकी चार जिल्दोंमें ("ब्रोफवेक्सेल"), इस विषय पर बहुत बड़ी सामग्री उपलब्ध है। यह सामग्री एकत्रित और व्यवस्थित होनेको है, उसका अध्ययन और विस्तार करना है। इसी कारणसे इस बातपर जोर देना आवश्यक है कि मार्क्सने इस पहलूसे रहित भौतिकवादको सही अर्थमें अपूर्ण, एकांगी और निर्जीव समझा था। तो भी, हमें इस सम्बन्धमें कुछ बहुत ही साधारण और संक्षिप्त बातोंसे संतोष करना होगा। अपने भौतिकवादी-द्वंद्ववादी दृष्टिकोण के साधारण सिद्धान्तोंके नितान्त अनुकूल ही मार्क्सने सर्वहारा कार्यनीतिके मूल कर्तव्यकी व्याख्या की थी। किसी भी समाजके सभी वर्गोंके निरपवाद रूपसे सभी परस्पर सम्बन्धोंकी सम्पूर्णताको वस्तुगत रूपसे ध्यानमें रख कर ही, और फलतः समाजके विकासकी वस्तुगत अवस्थाको ध्यानमें रख कर ही, साथ ही उस समाजसे दूसरे समाजोंके परस्पर सम्बन्धोंको ध्यानमें रखकर ही, अग्रसर वर्गकी सही कार्यनीतिका आधार मिल सकता है। सभी वर्गों और देशोंको जड़ रूपमें नहीं वरन् गतिशील रूपमें देखना चाहिये, अर्थात् वे स्थिर नहीं हैं वरन् गतिशील हैं (उनकी गतिके नियम प्रत्येक वर्गके अस्तित्वकी आर्थिक परिस्थितियोंसे निश्चित होते हैं।) इसके बाद इस गतिको भूतकालीन दृष्टिकोणसे नहीं, वरन् भविष्यके दृष्टिकोणसे भी देखना चाहिये। उसे "विकासवादियों" की निम्न धारणाके अनुसार ही नहीं, जिन्हें केवल धीमे परिवर्तन दिखाई देते हैं, वरन् द्वंद्ववादी दृष्टिकोणसे देखना चाहिये। मार्क्सने एंगेल्सको लिखा था :—

"इस कोटिकी महान् प्रगतिमें बीस वर्ष एक दिनसे अधिक नहीं है— अतएव आगे चलकर ऐसे दिन आ सकते हैं जो बीस-बीस वर्षोंके बराबर हों।" ("ओफ्वेरसेल")

प्रगतिकी हर मंजिलमें, हर क्षण, सर्वहारावर्गको मानव-इतिहासकी वस्तुगत और अनिवार्य गतिशीलता (डायलेक्टिक्स) को ध्यानमें रखना चाहिये। उसे एक ओर राजनीतिक शिथिलताके दिनोंमें या उन दिनोंमें जब नामचारके "शान्तिपूर्ण" विकासपथपर 'नौ दिन चले अढाई कोस' की प्रगति हो रही हो, अग्रसर वर्गकी शक्ति, युद्धसामर्थ्य और वर्ग-चेतनाको बढ़ाना चाहिये। दूसरी ओर इस वर्गके आन्दोलनके "अन्तिम ध्येय" की दिशामें इस कार्यका संचालन करना चाहिये और उसमें वह शक्ति उत्पन्न करनी चाहिये जिससे कि उन महान दिनोंमें "जो बीस-बीस वर्षोंके बराबर हों," वह महान् कार्योंको प्रत्यक्ष रूपसे सम्पन्न कर सके। इस सम्बन्धमें मार्क्सके दो तर्क विशेष महत्वके हैं। उनमेंसे एक दर्शन-शास्त्रकी निर्धनतामें है और उसका सम्बन्ध औद्योगिक संघर्ष और सर्वहारा वर्गके औद्योगिक संगठनोंसे है, दूसरा,कम्युनिस्ट-घोषणा-पत्रमें है और उसका संबन्ध सर्वहारा वर्गके राजनीतिक कार्योंसे है। पहला इस प्रकार है :

"बड़े पैमानेके उद्योग-धन्धोंसे एक ही जगह ऐसे आदमियोंकी भीड़ जुट जाती है जो एक दूसरेसे अपरिचित होते हैं। परस्परकी प्रतियोगिताके कारण उनकी रुचि अलग-अलग होती है। लेकिन अपनी मजूरी बनाये रखनेकी आवश्यकता स्वामीके प्रति एक समान रुचिका कारण बनती है और उन्हें विरोधकी समान विचार-भूमि पर एक कर देती है। यह मेल...पहले अलग-अलग होता है, उसके बाद उससे गुट बनते हैं।...और संयुक्त पूँजीसे सदा मुकाबला होने पर उनके लिये मजूरीसे ज्यादा अपनी जमातको बनाये रखना जरूरी हो जाता है।... इस संघर्षमें—एक अच्छे खासे गृहयुद्धमें—आगामी युद्धके लिये सभी आवश्यक तत्व विकसित और संयुक्त होते हैं। एक बार इस बिन्दु तक पहुँचने पर जमातपर राजनीतिक रंग चढ़ जाता है।" ("दर्शन शास्त्रकी निर्धनता")

यहाँ पर बीसों वर्षके लिये, उस लंबी अवधिके लिये जब मजदूर "भावी-संग्राम" की तैयारी करते हैं, हमें आर्थिक संघर्ष और ट्रेड यूनियन आन्दोलन का कार्यक्रम और उसकी कार्यनीतिका निर्देश मिल जाता है। इसके साथ-साथ ब्रिटेनके मजदूर-आन्दोलनका हवाला देते हुये मार्क्स और एंगेल्सने जो कई बातें कही हैं, हमें उनकी ओर भी ध्यान देना चाहिये। उन्होंने बताया है कि औद्योगिक "समृद्धि" के फलस्वरूप "मजदूरोंको खरीद लेनेके प्रयत्न किये जाते हैं" (मार्क्स एंगेल्स पत्रावली, जर्मन-संस्करण) जिससे कि वे संघर्ष से हट जायें। उन्होंने बताया है कि कैसे साधारणतः यह समृद्धि "मजदूरोंको वरग-लाती है", कैसे ब्रिटेनके सर्वहारा वर्गका "पूँजीवादीकरण" हो रहा है; कैसे "इस सबसे अधिक पूँजीवादी जातिका चरम ध्येय एक पूँजीवादी अभिजात-वर्ग और उसके साथ पूँजीवादी सर्वहारा वर्गकी स्थापना करना है"; कैसे ब्रिटिश सर्वहारा वर्गको "क्रांतिकारी शक्ति" खोजती जाती है; कैसे काफी समय तक राह देखनी होगी "इसके पहले कि ब्रिटिश मजदूर अपने प्रकट पूँजीवादी पतन से बच सकें"; कैसे ब्रिटिश आन्दोलनमें चार्टिस्टोंका दम नहीं है; कैसे ब्रिटिश मजदूरके नेता "उग्र पूँजीवादी और मजदूर" के बीचकी सी कोई चीज बनते जा रहे हैं; कैसे ब्रिटिश एकाधिकारके कारण, और जब तक वह एकाधिकार बना रहेगा, तब तक "ब्रिटिश मजदूर उनसे मन न होंगे।" यहाँ पर मजदूर आन्दोलनकी साधारण प्रगति (और उसके परिणाम) के प्रसंगमें आर्थिक संघर्षकी कार्यनीतिपर बड़े ही उदार, अनेकांगी, द्वंद्ववादी और सच्चे क्रांतिकारी दृष्टिकोणसे विचार किया गया है।

राजनीतिक संघर्षकी कार्यनीति पर कम्युनिस्ट-घोषणापत्रने यह आधार-भूत मार्क्सीय धारणा पेश की थी,—

"कम्युनिस्ट मजदूर-वर्गके तात्कालिक, उद्देश्यों (माँगों) की प्राप्ति के लिये, मजदूर-वर्गके आर्थिक हितोंकी रक्षाके लिये लड़ते हैं, किन्तु वर्तमान आन्दोलनके साथ-साथ वे मजदूर-वर्गके भविष्यपर भी ध्यान रखते हैं, उसके भावी हितोंके लिये भी लड़ते हैं।" (कम्युनिस्ट-घोषणापत्र—हि. सं., पृष्ठ० ६६)

इसालिये १८४८ में मार्क्सने "किसान क्रांति" को पोलिश पार्टीका

समर्थन किया था, "जिस पार्टीने १८४६ में क्रैकाउ विद्रोहका सूत्रपात किया था।" १८४८-४६ में जर्मनीमें उन्होंने उग्र क्रान्तिकारी जनवादका समर्थन किया और बादमें, जो कुछ उन्होंने कार्यनीतिके बारेमें कहा था, उसका एक शब्द भी वापस नहीं लिया। उनकी दृष्टिमें जर्मन पूंजीपति "पहलेसे ही जनता से दगा करनेके फेरमें थे" (केवल किसानोंसे समझौता करके ही पूँजीपति पूरी तरह अपनी लक्ष्य-सिद्धि कर सकते थे) "और समाजकी पुरानी व्यवस्थाके ताजपोश प्रतिनिधियोंसे समझौता करनेका उनमें रुझान था।" पूँजीवादी-जनवादी क्रान्तिके समय जर्मन पूँजीपतियोंकी वर्गस्थितिका यह संक्षिप्त विवरण इस प्रकार और बातोंके साथ उस भौतिकवादका एक नमूना है जो समाजको गतिशील रूपमें देखता है, और गतिके उसी रूपमें नहीं जिसकी दिशा पीछेकी ओर है।

> "इन्हें अपने ऊपर भरोसा नहीं है, जनतामें भरोसा नहीं है, जो नीचे हैं उनसे ये थरथर काँपते हैं...भय है कि सारी दुनियाको हिला देने वाला तूफान न आ जाय...ताकत कहीं नहीं, हर जगह लुकाचोरी...ये जर्मन पूँजीवादी एक बूढ़े खूसट आदमी जैसे हैं जिसे अपनी बुढ़ौतीके हितोंके लिये एक नववयस्क और शक्तिमान जनताके प्रथम वयसुलभ भावोंका मार्गनिर्देश करना पड़े।...("नोय राइनिश त्साइटुङ्", १८४८)

लगभग बीस साल बाद (११ फरवरी, १८६५—स.) एंगेल्सको लिखते हुए मार्क्सने कहा था कि १८४८ की क्रान्तिकी असफलताका कारण यह था कि पूँजीपतियोंने स्वतंत्रताके लिये लड़नेकी कल्पना मात्रसे गुलामीके साथ शान्तिको श्रेयस्कर समझा। जब १८४८-४६ का क्रांतिकारी युग समाप्त हो गया, तो मार्क्सने क्रान्तिके साथ किसी भी तरह खिलवाड़ करनेका भारी विरोध किया (शापर और विलिच और उनसे संग्राम) और इस पर जोर दिया कि हमारे लिये यह जानना जरूरी है कि नयी परिस्थितियोंमें जब अर्थ "शान्तिके साथ" नयी क्रांतियोंकी तैयारी हो रही थी, हमें कैसे कार्य करना चाहिये। १८५६ की घोर प्रतिक्रियाके दिनोंमें मार्क्सने जर्मनीकी स्थितिका जैसा विवरण दिया था उससे स्पष्ट है कि वह किस भावना से काम किया जाना पसन्द करते थे :

मार्क्स

"किसी दूसरे कृषक-युद्ध द्वारा सर्वहारा-क्रान्तिके समर्थन किये जानेकी सम्भावना पर ही जर्मनीमें सब कुछ निर्भर है।" (मार्क्स-एंगेल्स पत्रावली—ज. स.)

जर्मनीमें जब पूँजीवादी-जनवादी क्रान्ति चालू थी, तो सोशलिस्ट सर्वहारा वर्गकी कार्यनीतिके नाते मार्क्सने सारा ध्यान किसानोंकी जनवादी शक्तिको बढ़ानेमें लगाया। उनका कहना था कि और बातोंके साथ लासाल का कार्य "वस्तुगत रूपसे...प्रुशियन हितमें सम्पूर्ण मजदूर आन्दोलनके प्रति विश्वासघात था" क्यों कि वह "युंकरों (प्रशियाके जमींदारों—सं.) और प्रुशियन राष्ट्रवादके पक्षमें था।" ५ फरवरी १८६५ को अपनी एक संयुक्त घोषणाके बारेमें—जो प्रेसमें थी—मार्क्ससे विचार-विनिमय करते हुए एंगेल्सने लिखा था :

"...ऐसे देशमें जहाँ कृषिकी बहुत बड़ी प्रधानता हो, औद्योगिक सर्वहारा वर्गके नामपर पूँजीपतियोंपर ही अकेले हमला करना, और महान् सामन्तशाही अभिजात—वर्गके अंकुशके नाते ग्रामीण सर्वहारा वर्गके दादापंथी शोषणके प्रति एक शब्द भी न कहना, निरी कायरता है। . ." (उपरोक्त)

१८६४ से १८७० की अवधिमें, जब जर्मनीमें पूँजीवादी-जनवादी क्रान्तिका युग, वह युग जिसमें प्रुशिया और आस्ट्रियाके शोषित वर्गोंने किसी न किसी तरह ऊपरसे क्रान्तिको सम्पन्न करनेके लिये युद्ध किया था, समाप्त हो रहा था, मार्क्सने लासालकी ही भर्त्सना न की थी कि वह बिस्मार्कसे मेल-मिलाप कर रहा था, वरन् विलहेम लीबनेख्टको भी ठीक रास्ता दिखाया क्योंकि वह "आस्ट्रिया-भक्ति" में निमग्न हो रहे थे और एकदेशीयतावादका पक्ष समर्थन करने लगे थे। मार्क्सने उस क्रान्तिकारी कार्यनीतिपर भरपूर जोर दिया जो बिस्मार्क और "आस्ट्रिया-भक्ति" दोनोंसे ही समान निर्ममता से युद्ध करे, ऐसी कार्यनीति जो न केवल "विजेता", प्रुशियन युंकरके अनुकूल न हो वरन् उसी आधार पर, जो प्रुशियाकी सैनिक विजयसे बन था, तुरन्त ही फिर संग्राम भी छेड़ दे। (उपरोक्त)

अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघमें ६ सितम्बर १८७० के अपने प्रसिद्ध भाषणमें

मार्क्सने फ्रेंच सर्वहारा वर्गको असमय विद्रोह करनेकी ओरसे सावधान किया। लेकिन १८७१ मे जब विद्रोह वास्तवमें हो गया तो मार्क्सने बड़े ही जोरसे जनताको क्रान्तिकारी पहलकदमीका स्वागत किया कि वह "आसमानको हिला देने" के लिये चली थी (कुगेलमनको मार्क्सका १२ अप्रैल १८७१ का पत्र)। द्वंद्वात्मक भौतिकवादके मार्क्सीय दृष्टिकोणसे,सर्वहारा संघर्षको साधारण प्रगति और उसके विकासके दृष्टिकोणसे ऐसी स्थितिमें और ऐसी ही अन्य स्थितियोंमें, अब तकके मोर्चेसे पीछे हट आने और बिना युद्धके आत्मसमर्पण कर देनेकी अपेक्षा क्रान्तिकारी आक्रमणकी विफलता कम भयानक थी क्योंकि उस तरहके आत्मसमर्पणसे सर्वहारा वर्गका मनोबल क्षीण हो जाता और संघर्षके लिये उसकी तत्परता नष्ट हो जाती। राजनीतिक शिथिलताके दिनोंमें और उन दिनोंमें जब पूँजीवादका कानूनीपन फैला हुआ हो, तब लड़ाईके न्यायसंगत साधनोंके महत्वको पूरी तरह स्वीकार करते हुए, मार्क्सने १८७७ और १८७८ में, जब जर्मनोंने सोशलिस्टोंके खिलाफ़ खास क़ानून बना था, मोस्टकी "क्रान्तिकारी शब्द-रचना" की तीव्र निन्दा की थी। लेकिन उन्होंने बाक़ायदा सामाजिक-जनवादी पार्टी नाम धारण करनेवाली पार्टीकी कम नहीं, शायद ज़्यादा ही, खबर ली कि उसने खास कानूनके जवाबमें गैर-कानूनी लड़ाईका तुरन्त सहारा लेनेमें निश्चय, दृढ़ता और क्रान्तिकारी भावनाका परिचय नहीं दिया। (उपरोक्त)



मार्क्सवादके तत्व और उसके उद्गम

सभ्य संसार में हर जगह मार्क्सके निर्देशोंसे पूंजीवादी विज्ञान (उदार-मतावलंबी और बाक़ायदा पूँजीवादी, दोनों ही) में बड़ी घृणा और विरोधका जन्म होता है। उनकी नजरोंमें मार्क्सवाद "वाममार्ग"की तरहसे है। इस भिन्न धारणाकी आशा भी नहीं की जा सकती क्योंकि वर्ग-संघर्षके आधार पर खड़े हुए समाजमें "निष्पक्ष" सामाजिक विज्ञान नहीं हो सकता। सभी विज्ञान उदारमतावलंबी और बाक़ायदा पूँजीवादी, किसी-न-किसी रूपमें पूँजीवादी गुलामीका समर्थन करते हैं, जब कि मार्क्सवादने इस गुलामीके खिलाफ

जिहाद बोल रखा है। जिस समाजमें पूँजीकी गुलामी चलती हो, उसमें यह आशा करना कि विज्ञान निष्पक्ष होगा, मूर्खता और सिधाईका परिचायक है। यह वैसी ही बात है कि इस प्रश्नपर कि पूँजीके लाभ कम करके मजदूरोंके पैसे बढ़ा दिये जायें, मालिकोंसे निष्पक्षताकी आशा करना होगा।

लेकिन, बात इतनी ही नहीं है। दर्शनशास्त्र और सामाजिक विज्ञानका पूर्व इतिहास बताता है कि मार्क्सवादमें "सम्प्रदाय-विशेष" जैसी कोई वस्तु नहीं है, जो विश्व-सभ्यताका प्रगतिके राजमार्गसे दूर, कहीं निरालेमें जन्मा हुआ शुद्ध सिद्धान्त मात्र हो। इसके विपरीत मार्क्सकी प्रतिभा इस बातमें प्रकट हुई है कि मानव जातिके सबसे ऊचे दिमागोंने जो सवाल किये थे, उनका उन्होंने उत्तर दिया। उनके सिद्धान्त दर्शन, अर्थशास्त्र और समाजवादके श्रेष्ठ प्रतिनिधियोंके विचारोंको तुरन्त और सीधे-सीधे आगे ले जाते हैं।

मार्क्सके निर्देश शक्तिशाली हैं क्योंकि वे सत्य हैं। वे पूर्ण और सामंजस्ययुक्त हैं जिनसे मनुष्यका विश्वके प्रति एक संगत दृष्टिकोण मिलता है, उनका किसी भी अन्धविश्वास, प्रतिक्रिया और पूँजीवादी-शोषणके समर्थनसे समझौता नहीं हो सकता। १९वीं सदीमें मानवजातिकी श्रेष्ठ रचना—जर्मन-दर्शन, अंग्रेजी अर्थशास्त्र और फ्रांसीसी समाजवादका न्यायसंगत अनुगामी मार्क्सवाद है।

मार्क्सवादके ये तीन उद्गम उसके तीन तत्व भी हैं और हम उन्हीं पर यहाँ थोड़ा विचार करेंगे।

(१)

मार्क्सवादका दर्शन "भौतिकवाद" है। योरपके सम्पूर्ण पिछले इतिहासमें, विशेषकर फ्रांसमें १८वीं सदीकी समाप्तिकी ओर जब हर तरहके मध्यकालीन कूड़ा-करकटसे, संस्थाओं और विचारोंमें दासप्रथासे निर्णयात्मक युद्ध हुआ, तब भौतिकवाद ही ऐसा संगत दर्शन सिद्ध हुआ जो प्राकृतिक विज्ञानके सभी निर्देशोंके अनुकूल हो, और अन्धविश्वास, साखो-शब्दों आदिका विरोधी हो। इसलिये जनवादके शत्रुओंने भौतिकवादको "परास्त करने", उसकी जड़ काटने और बदनाम करनेका भरसक प्रयत्न किया और दार्शनिक आदर्शवादके

विभिन्न रूपोंका पक्ष समर्थन करते रहे जो किसी न किसी रूपमें धर्मकी रक्षा और समर्थन करनेकी ओर ले जाता है।

मार्क्स और एंगेल्सने बड़ी ही दृढ़तासे दार्शनिक भौतिकवादके पक्षका समर्थन किया और इस आधारसे डिगनेवाली धारणाकी भूलको स्पष्ट समझाया। उनका मत एंगेल्सके लुडविग फायरबाख और "डूरिंग-मत-खंडन" में अधिक विस्तार और पूर्णतासे प्रतिपादित हुआ : ये पुस्तकें भी कम्युनिस्ट-घोषणापत्र की तरह हर सचेत मजदूरके लिये आवश्यक पुस्तकें हैं।

परन्तु मार्क्सने १८वीं सदीके भौतिकवादसे सन्तोष नहीं कर लिया वरन दर्शन-शास्त्रको आगे बढ़ाया। उन्होंने उसे जर्मनीके पुरातन दर्शन-शास्त्रकी विशेषताओंसे, और हेगेलकी विचारधारासे विशेषकर, भरापूरा बनाया। हेगेलकी विचारधारासे ही फायरबाखके भौतिकवादकी उत्पत्ति हुई थी। इनमें मुख्य सिद्धान्त द्वन्द्ववादका है, अर्थात् एकांगीपनसे दूर, विकासकावह सिद्धान्त जो अधिक पूर्ण और व्यापक है। यह मानव-ज्ञानकी सापेक्षताका भी सिद्धान्त है और हमें अनन्त काल तक विकासमान भूत (प्रकृति) का प्रतिबिम्ब देता है। प्रकृति-विज्ञानकी नवीनतम खोजें—रेडियम, इलेक्ट्रोन, तत्वका परिवर्तन—मार्क्सके द्वंद्वात्मक भौतिकवादको विलक्षण रूपसे पुष्टि करती हैं, यद्यपि पूंजीवादी दार्शनिक पुराने और सड़े-गले आदर्शवादकी ओर "नये सिरेसे" लौटते रहे हैं।

भौतिक आदर्शवादको व्यापक बनाते हुए और उसका विकास करते हुए मार्क्सने उसे उसके परिणाम तक पहुंचा दिया। उन्होंने उसके प्रकृति-बोधका मानव-समाजके बोध तक प्रसार किया। मार्क्सका ऐतिहासिक भौतिकवाद वैज्ञानिक चिन्तनकी श्रेष्ठ विजय है। उस समय तक इतिहास और राजनीतिके चिन्तनमें जो उच्छृंखलता और स्वेच्छाचारिता थी, उसका स्थान अत्यंत संगत और सामञ्जस्यपूर्ण वैज्ञानिक सिद्धान्तने लिया जिसने दिखाया कि उत्पादक शक्तियोंके विकासके फलस्वरूप कैसे सामाजिक जीवनकी एक व्यवस्थासे दूसरी और उच्चतर व्यवस्था विकसित होती है—उदाहरणके लिये, सामंतशाही व्यवस्थासे कैसे पूँजीवादका विकास होता है।

जैसे मानव-बोध प्रकृतिको (अर्थात् विकासमान भूतको), जिसका उससे

स्वतंत्र अस्तित्व है, प्रतिबिम्बित करता है, वैसे ही मनुष्यका सामाजिक बोध भी (अर्थात् दार्शनिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि— विभिन्न मत और सिद्धान्त) समाजकी आर्थिक व्यवस्थाको प्रतिबिम्बित करता है। राजनीतिक संस्थाएँ आर्थिक आधारपर बनी हुई इमारतें हैं। जैसे, हम देखते हैं कि आधुनिक योरपीय राज्योंके विभिन्न राजनीतिक रूप सर्वहारा वर्गपर पूँजीवादी प्रभुत्वको ही दृढ़ करते हैं।

मार्क्सका दर्शन पूर्ण बनाया हुआ दार्शनिक भौतिकवाद है जिसने मानव-जातिको, विशेषकर मजदूर-वर्गको, ज्ञानका एक समर्थ अस्त्र दिया है।

(२)

यह जानकर कि आर्थिक व्यवस्था ही वह आधार है जिसपर राजनीतिकी इमारत खड़ी होती है मार्क्सने आर्थिक व्यवस्थाके अध्ययनकी ओर और भी ध्यान दिया। मार्क्सके मुख्य ग्रंथ "पूँजी"में आधुनिक अर्थात् पूँजीवादी समाजकी आर्थिक व्यवस्थाका अध्ययन किया गया है।

मार्क्सके पहले इंगलैण्डमें, जो सबसे अग्रसर पूँजीवादी देश था, पुरातन अर्थशास्त्रका निर्माण हुआ था। आर्थिक व्यवस्थाकी छान-बीन करते हुए एडम स्मिथ और डेविड रिकार्डोने मूल्यके श्रम-सिद्धान्तकी नींव डाली थी। मार्क्सने उनके कामको आगे बढ़ाया। उन्होंने इस सिद्धान्तको कसौटी पर सिद्ध किया और संगतरूपसे उसे विकसित किया। उन्होंने दिखाया कि प्रत्येक वस्तुका मूल्य उसके उत्पादनके लिये सामाजिक दृष्टिसे आवश्यक श्रम-कालकी मात्रासे निश्चित होता है।

जहाँ पूँजीवादी अर्थशास्त्री वस्तुओंका सम्बन्ध (एक वस्तुसे दूसरीका विनिमय) देखते थे, वहाँ मार्क्सने मनुष्योंके सम्बन्धको प्रकट किया। वस्तु-विनिमयसे बाजार द्वारा विभिन्न उत्पादकोंका सम्बन्ध प्रकट होता है। मुद्रासे यह पता चलता है कि यह सम्बन्ध निकटसे निकटतर होता जाता है और विभिन्न उत्पादकोंके समग्र आर्थिक जीवन को अविच्छिन्न रूपसे एक ही सूत्रमें गूँथता जाता है। पूँजीसे इस सम्बन्धके और आगेके विकासका पता लगता है; मनुष्यकी श्रम-शक्ति वस्तु बन जाती है। पैसेके लिये मजूरी करनेवाला जमीन, कारखाने और उत्पादनके साधनोंके मालिकको अपनी श्रम-शक्ति बेचता

देता है। मजदूर कामके घंटोंके एक भागमें अपने और अपने कुटुम्बके पोषणके लिये काम करता है (उसकी मजदूरी), और दूसरे भागमें वह बिना मजदूरी लिये काम करता है और पूँजीपतिके लिये अतिरिक्त मूल्यका निर्माण करता है, जो पूँजीवादी वर्गके लाभका स्रोत है, उसकी सम्पत्तिका उद्गम है।

अतिरिक्त मूल्यका सिद्धान्त मार्क्सकी आर्थिक धारणाओंका मूलाधार है।

मजदूरोंके श्रमसे बनी हुई पूँजी उन्हींको दबाती है, छुटपुँजिया मालिकोंको तबाह कर देती है और बेकारोंकी फ़ौज खड़ी कर देती है। उद्योग-धन्धोंमें हम तत्काल बड़े पैमानेके उत्पादनको जीत होते देख सकते हैं, लेकिन यही बात हम कृषिमें भी देखते हैं। बड़ी पूँजीवादी कृषिकी श्रेष्ठता बढ़ जाती है, मशीनोंका अधिक प्रयोग होता है, किसानोंवाली आर्थिक व्यवस्था अर्थ-पूँजीके फन्देमें पड़ जाती है, पिछड़ी हुई कार्य-प्रणालीके बोझसे दबकर वह मिटते-मिटते तबाह हो जाती है। कृषिमें छुटपुँजियाके उत्पादनके रूप भिन्न होते हैं लेकिन उनकी तबाहीमें कोई शक नहीं हो सकता।

छुटपुँजिया उत्पादनको मारकर पूँजी, श्रमकी उत्पादकताको बढ़ाती है और सबसे बड़े पूँजीपतियोंके संघोंके एकाधिकारको स्थापित करती है। स्वयं उत्पादन अधिकाधिक सामाजिक होता जाता है। हजारों और लाखों मजदूर एक व्यवस्थित आर्थिक व्यूहमें सम्बद्ध होते हैं, परन्तु उनके सामूहिक फलको मुट्ठीभर पूँजीपति हजम कर जाते हैं। उत्पादनमें उच्छृंखलता, संकट, बाजारोंके लिये बेतहाशा भाग-दौड़, जन-साधारणके लिये जीविकाका अनिश्चित होना बढ़ता जाता है।

पूँजीपर मजदूरोंकी निर्भरताको बढाते हुए पूँजीवादी व्यवस्था संयुक्त श्रमकी महान् शक्तिका निर्माण करती है।

मार्क्सने वस्तुओंके उत्पादनकी आर्थिक व्यवस्थाके पहले बीजों और सीधे विनिमयसे लेकर पूँजीवादके उच्चतम रूपों तक, बड़े पैमानेके उत्पादन तक, उसके विकासकी रूपरेखाओंकी ओर ध्यान दिया है।

और नये-पुराने सभी देशोंका अनुभव मजदूरोंकी अधिकाधिक संख्या वर्ष-प्रतिवर्ष मार्क्सके निर्देशोंकी सत्यता स्पष्ट रूपसे प्रकट करता है।

सारे संसार में पूँजीवादकी विजय हुई है लेकिन यह विजय पूजीपर श्रमके विजय-प्रभातका प्रत्यूषकाल मात्र है।

(२)

दास-प्रथाके ध्वंसके बाद जब एक "स्वाधीन" पूँजीवादी समाजका जन्म हुआ, तो यह तुरन्त पता लग गया कि यह स्वाधीनता जाँगर चलानेवालोंके उत्पीड़न और शोषणकी एक नयी व्यवस्थाका सूचक है। इस उत्पीडनके फलस्वरूप और उसके विरोधमें तुरन्त ही अनेक सोशलिस्ट सिद्धान्तोंकी सृष्टि होने लगी। परन्तु समाजवाद अपने प्रथम मौलिक रूपमें काल्पनिक (यूटोपियन) था। उसने पूँजीवादी समाजकी आलोचना की, उसकी निन्दा और भर्त्सना की, उसके विनाशके स्वप्न देखे, उसने सुन्दरतर व्यवस्थाके अनोखे कल्पनाचित्र बनाये और धनिकोंको समझानेका प्रयत्न किया कि उनका शोषण पाप है।

लेकिन काल्पनिक समाजवाद कोई विकासका मार्ग न दिखा सका। न तो वह पूँजीवादी गुलामीकी तात्विक व्याख्या कर सका, न उसके विकासके नियमोंका पता लगा सका, और न उस सामाजिक शक्तिको पा सका जो नये समाजके निर्माणमें समर्थ हो सकती थी।

इसी बीचमें सामन्तवाद और दासप्रथाके ध्वंसके साथ-साथ योरपमें हर जगह जो क्रान्तिके तूफान चले, उनसे यह और भी स्पष्टतासे प्रकट हो गया कि वर्गोंका संघर्ष ही समग्र विकासका आधार और उसकी प्रेरक शक्ति है।

बिना तीव्रतम विरोधका सामना किये सामन्तशाही पर राजनीतिक स्वाधीनताकी एक भी विजय प्राप्त नहीं हुई। पूँजीवादी समाजके विभिन्न वर्गोंमें बिना जीवन-मरणका संघर्ष हुए एक भी पूँजीवादी देशकी न्यूनाधिक स्वतंत्र और जनवादी आधार पर स्थापना नहीं हुई।

मार्क्सकी प्रतिभा इसमें थी कि उन्होंने इन सब बातोंसे वह परिणाम निकाला और संगतरूपसे उसे विस्तृत किया जिसे विश्व-इतिहास हमें सिखाता है। यह परिणाम वर्ग-संघर्षका सिद्धान्त है।

लोग.ने मूर्खतावश राजनीतिमें धोखा खाया है और खुदको धोखा दिया है, और तब तक देंगे जब तक कि वे किसी भी नैतिक, धार्मिक, राजनीतिक

और सामाजिक शब्दावली, घोषणाओं और प्रतिज्ञाओंके पीछे एक न एक-वर्गके हितोंको पहचानना नहीं सीखते। पुरातनके समर्थकोंसे उन्नति और सुधारके समर्थक तब तक धोखा खायेंगे जब तक वे यह न समझेंगे कि हर पुरानी संस्था, वह कितनी ही अजीब और सड़ा-गला क्यों न मालूम होती हो, एक न एक शासक-वर्गकी शक्तियोंके सहारे जिया करती है। और इन वर्गोंकी कमर तोड़ने का एक ही मार्ग है कि हम अपने चारों ओरके समाजमें ही उन शक्तियोंको ढूँढें और उन्हें सचेत करके उनका संगठन करें, जो अपनी सामाजिक स्थितिसे ऐसी शक्तिका निर्माण कर सकती हैं, जो पुरातनका ध्वंस करके नवीनकी स्थापना कर सके और अवश्य करे।

केवल मार्क्सके दार्शनिक भौतिकवादने सर्वहारा वर्गको उस आध्यात्मिक दासताने बाहर निकलनेका मार्ग दिखाया जिनमें आज तक सभी पीड़ित वर्ग निमग्न थे। केवल मार्क्सके आर्थिक सिद्धान्तोंने पूँजीवादकी आम व्यवस्थामें सर्वहारा वर्गकी वास्तविक स्थितिकी व्याख्या की।

सारे संसारमें, अमरीकासे लेकर जापान तक, स्वेडेनसे लेकर दक्षिणी अफ्रीका तक सर्वहार वर्गके स्वतन्त्र संगठन बढ़ रहे हैं। वर्ग-संघर्ष करनेमें मजदूरोंको शिक्षा और प्रकाश मिल रहा है, पूँजीवादी समाजके कुसंस्कारोंको वे दूर कर रहे हैं, अपनेको और दृढ़तासे संगठित कर रहे हैं और सफलताको आँकना सीख रहे हैं, वे अपनेको सबल बनाते हुए अबाध रूपसे विकसित हो रहे हैं।

मार्च, १९१३



मार्क्सवाद और संशोधनवाद

एक कहावत है कि मानव-हितोंपर रेखागणितके सिद्ध सत्योंका प्रभाव पड़े तो निस्सन्देह उनका खंडन करनेके प्रयत्न किये जायेंगे। प्राकृतिक इतिहासके जो सिद्धान्त धर्मशास्त्रके पुराने संस्कारोंके आड़े आये, उनसे भयंकर संघर्ष उत्पन्न हो चुका है, और आज भी होता है। इसलिये इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि मार्क्सके निर्देश, जिनसे वर्तमान समाजमें अग्रसर

वर्गको सचेत और संगठित करनेका उद्देश्य प्रत्यक्ष रूपसे सिद्ध होता है, जो इस वर्गके कार्योंकी ओर इंगित करते हैं और सिद्ध करते हैं कि आजकी व्यवस्थाकी जगह अनिवार्यतः एक नयी व्यवस्था लेगी—इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इन निर्देशोंको अपने जीवन पथ पर पग-पग धरतीके लिये घमासान युद्ध करना पड़ा।

पूँजीवादी दर्शन और विज्ञानकी चर्चा करनेकी जरूरत नहीं है, सम्पत्तिशाली उदीयमान युवक दलको बरगलानेके लिये वह वर्गोंकी ओरसे उनके अनुमोदित प्रोफेसरों द्वारा पढ़ाया जाता है जिससे उन्हें घरके और बाहरके दुश्मनके विरुद्ध "शिक्षित" किया जा सके। यह विज्ञान मार्क्सवादकी बात नहीं सुनना चाहता। उसका कहना है कि मार्क्सवादका खंडन किया जा चुका है, वह मिट चुका है। मार्क्सपर जोशसे हमला करनेवाले नौजवान पंडित भी हैं जिनकी जीविका समाजवादके खंडन पर ही चलती है; और ऐसे पंगु बूढ़े भी हैं जो सभी तरहकी ध्वस्त "विचार-धाराओं" के तालपत्रको हिफाजत से रखते हैं। मार्क्सवादके विकास और मजदूर-वर्गमें उसके विचारोंके जड़ पकड़नेसे यह निश्चित है कि मार्क्सवाद पर ये पूँजीवादी आक्रमण पहलेकी अपेक्षा अब अधिक बार और जोरोंसे हों। लेकिन हर बार, जब पूंजीवादी विज्ञान मार्क्सवादका "ध्वंस कर चुकता है", तब वह और भी शक्तिशाली और दृढ़ हो जाता है और उसकी प्राणशक्ति बढ़ जाती है।

फिर भी मजदूर-वर्गके संघर्षसे जितने भी सिद्धान्त सम्बन्धित हैं, और अधिकतर सर्वहारा वर्गमें प्रचलित हैं, उन्हें देखते हुए मार्क्सवादने तुरन्त ही अपना पाया नहीं जमा लिया। अपने जीवनके पहले पचास वर्षोंमें (१८४० से लगाकर) मार्क्सवादने उन सिद्धान्तोंसे संघर्ष किया जो मूलतः उसके विरोधी थे। १८४० से १८४५ तक मार्क्स और एंगेल्सने उग्र युवक हेगेलपंथियोंको निपटाया जो दार्शनिक आदर्शवादके दृष्टिकोणका समर्थन करते थे। १८५० के आसपास आर्थिक सिद्धान्तोंके क्षेत्रमें प्रूधों-पंथसे संग्राम आरम्भ हुआ। १८५० के बाद यह लड़ाई—१८४८ के तूफानी सालमें जो पार्टियाँ और सिद्धान्त पैदा हुए, उनकी आलोचना—पूरी हुई। १८६० के बाद युद्धक्षेत्र साधारण सिद्धान्तोंकी भूमि नहीं रहा वरन् तात्कालिक मजदूर-आन्दोलनके

निकटकी भूमि हो जाता है : इएटरनेशनलसे बाकूनिनपंथको बाहर करना। १८७० के बाद प्रूधोंपंथी मूलवर्गर कुछ समयके लिये जर्मनीमें आया और १८८० के लगभग गोचरवादी (पॉज़िटिविस्ट) डूरिंग। लेकिन सर्वहारा-वर्ग पर इन दोनोंका प्रभाव इस समय भी नगण्य था। मजदूर-आन्दोलनमें और सभी सिद्धान्तोंपर माक्र्सवादकी पूर्ण विजय हो चुकी थी।

१८६० के आसपास यह विजय बहुत-कुछ पूरी हो चुकी थी। लैटिन देशोंमें भी, जहाँ प्रूधों पंथकी परंपरा बहुत दिन तक क़ायम रही, मजदूर-पार्टियोंने अपने कार्यक्रम और कार्यनीतिका वस्तुत: माक्र्सवादी आधार पर निर्मित किया। समय-समय पर होनेवाली अन्तर्राष्ट्रीय कॉंग्रेसोंके रूपमें, मजदूर-आन्दोलनके पुनर्जीवित अन्तर्राष्ट्रीय संगठनने तुरन्त ही और प्राय: बिना किसी संघर्षके सभी महत्वपूर्ण बातों पर माक्र्सवादके दृष्टिकोणको अपना लिया। परन्तु जब माक्र्सवादने अपने विरोधके न्यूनाधिक संगत सिद्धान्तोंको बाहर कर दिया तो उन सिद्धान्तोंमें व्यञ्जित प्रवृत्तियाँ दूसरे मार्ग खोजने लगीं। संघर्षके अवसर और रूप बदल गये लेकिन संघर्ष चलता रहा। और माक्र्सवादके जीवनके पचास साल बीतनेके बाद (१८६० के लगभग) माक्र्स-वादका अपनी एक ऐसी प्रवृत्तिसे संघर्ष आरम्भ हुआ जो उसकी विरोधी थी।

पहलेके कट्टर माक्र्सवादी बर्न्सटाइनने इस धाराको नाम दिया। वह बड़ा तूफ़ान खड़ा करता हुआ, माक्र्सके संशोधनके साथ, माक्र्समें सबसे व्यापक संशोधन लेकर, संशोधनवादके साथ सामने आया। रूसमें भी, जहाँ माक्र्ससे इतर समाजवाद सबसे ज्यादा दिन तक अपना पाया, जमाये रहा,—और आर्थिक दृष्टिसे देशके पिछड़े होनेसे और दास-प्रथाके ध्वंसावशेष द्वारा तबाह किये हुए किसानोंकी प्रधानता होनेके कारण, यह स्वाभाविक भी था—रूसमें भी, हमारी आँखोंके सामने ही वह स्पष्टतः संशोधनवाद बनता जा रहा है। कृषि सम्बन्धी प्रश्नपर (कि सभी जमीन पर म्युनिसिपैलिटियोंका अधिकार हो) और कार्यक्रम तथा कार्यक्रमके साधारण प्रश्नों पर भी, हमारे सामाजिक लोकवादी (नरोद्‌नोकी) अपने पुराने शास्त्रके रुद्ध और जड़ अवशेषोंके बदले माक्र्समें अपने संशोधनों को रखते जाते हैं। वह शास्त्र अपने ढंगसे संगत था, और माक्र्सवादसे उसका मौलिक विरोध था।

मार्क्सके पहलेका समाजवाद ध्वस्त हो चुका है। वह अपनी जमीन पर अब लड़ाई नहीं लड़ रहा वरन् मार्क्सवादका ही साधारण भूमि पर संशोधन-वादके रूपमें लड़ने आया है। इसलिये हम संशोधनवादके सिद्धान्तों पर थोड़ा दृष्टिपात करें।

दर्शनके क्षेत्रमें, संशोधनवाद पूँजीवादके प्रोफेसरी "विज्ञानका" का पिछलगुआ बनकर चलता है। प्रोफेसर-समुदाय "काण्टकी ओर" लौट रहा था; इसलिये संशोधनवाद भी नव-काण्टपंथियोंके पीछे चल दिया। प्रोफेसर लोग दार्शनिक भौतिकवादके विरुद्ध पंडे-पुजारियोंकी बड़ो बाबा आदमकी बातें दुहराते थे—और संशोधनवादी भी संतोषसे मुस्कराते हुए बोले (अपनी अन्तिम पुस्तक के अनुसार शब्दशः बोले) कि भौतिकवादका बहुत पहले "खंडन हो चुका है।" प्रोफेसर लोग हेगेलको "बूढ़ा खूसट" कहकर उसकी अवहेलना करते थे, स्वयं हेगेलसे सौ बार ओछे छिछले आदर्शवादका प्रचार करने पर भी द्वंद्ववादके नामपर नाक-भौं सिकोड़ते थे। और उनके पीछे संशोधनवादी भी विज्ञानके इस दार्शनिक दलदलमें फँस गये; "तोड़े मरोड़े हुए" (और क्रान्तिकारी) द्वंद्ववादकी जगह उन्होंने "सीधे" (और शांतिपूर्ण) "विकास" को दी। प्रोफेसरोंको तनख्वाह मिलती थी अपने आदर्शवादी तथा "आलोचनात्मक" शास्त्रको मध्यकालीन प्रमुख "दर्शन" (अर्थात् धर्म-शास्त्र) के अनुकूल बना कर। और संशोधनवादी उनके और नजदीक आ गये और कहने लगे कि धर्म अपना निजी मामला है—आधुनिक राजसत्ताके सम्बन्धमें निजी नहीं, वरन् अग्रसर वर्गकी पार्टीके सम्बन्धमें।

मार्क्समें ऐसे "संशोधनों" के पीछे जो सचमुच वर्गहित छिपा है, उसकी चर्चा आवश्यक नहीं है। वह स्वयं प्रकट है। हम यहाँ केवल एक बातका उल्लेख करें कि अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक-जनवादमें केवल एक मार्क्सवादीने संशोधनवादियोंकी बेसिरपैरकी बातोंकी संगत द्वंद्वात्मक भौतिकवादके दृष्टि-कोणसे आलोचना की, और वह था प्लेखानोफ। आजकल प्लेखानोफ के

*बोग्दानोफ़, बाजारोफ़ आदि द्वारा लिखित मार्क्सवादके दर्शनकी रूपरेखा देखिये।

यह इस पुस्तककी विवेचना करनेका स्थान नहीं है, इसलिये, मैं

कार्यनीति सम्बन्धी अवसरवाद के विरुद्ध आलोचनाके नामपर पुरानी और प्रतिक्रियावादी खुराफातको ठेलनेकी बहुत भारी गलतियाँ की जा रही हैं, इसलिये निश्चित रूपसे इस बात पर जोर देना और भी आवश्यक है।

इसके बाद अर्थशास्त्रमें, पहले तो यह बात ध्यान देने योग्य है कि यहाँ पर संशोधनवादियोंकी "तरमीमें" ज़्यादा भरी-पूरी और व्यापक हैं। "आर्थिक विकास पर उपलब्ध नयी सामग्री" से जनताको प्रभावित करनेका प्रयत्न किया गया था। कहा गया कि 'बड़े पैमानेके उत्पादनसे छूँटपुँजिया उत्पादनका एक ठौर सिमटना और दबाना खेतोंमें नहीं होता और व्यापार और उद्योग-धन्धोंमें यह काम बहुत धीरे-धीरे होता है।' कहा गया कि संकट अब कम होते हैं और कमजोर होते हैं और शायद व्यापार और पूँजीके अन्तर्राष्ट्रीय संघोंसे पूँजीके लिये यह संभव होगा कि संकटोंका खातमा ही कर दे। कहा गया कि "विनाश" का सिद्धान्त, जिस विनाशकी ओर पूँजीवाद बढ़ा चला जा रहा है, दिवालिया हो गया है क्योंकि ऐसी प्रवृत्तियाँ दिखाई दे रही हैं जिनसे वर्गों को असंगतियाँ चीण होती जाती हैं और उनकी तीव्रता कम होती जाती है। अन्तमें, कहा गया कि बोम-बावर्कके अनुकूल मार्क्सके मूल्य-सिद्धांतको सुधारनेमें कोई हर्ज नहीं है।

इन प्रश्नोंपर संशोधनवादियोंसे संघर्ष अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादके सैद्धान्तिक चिन्तनको फिर जगानेमें वैसे ही सफल हुआ जैसे बीस साल पहले ड्यूरिंगके साथ एंगेल्सका विवाद हुआ था। संशोधनवादियोंकी युक्तियोंको आँकड़े आदि देकर छान-बीन की गयी। यह साबित हो गया कि वर्तमान छोटे पैमानेके उत्पादनके सम्बन्धकी उपलब्ध सामग्रीमें संशोधनवादियोंने बराबर हेरफेर किया था। छोटे पैमानेके उत्पादनसे बड़े पैमानेका उत्पादन उद्योग-धन्धोंमें ही नहीं, खेतोंमें भी, मशीन और व्यापार दोनों ही की दृष्टिसे

इतना ही कहूँगा कि मैं एक लेखमाला में या पुस्तिकामें निकट भविष्यमें ही, यह दिखाऊँगा कि मैंने यहाँ जो कुछ भी नव-कान्टपंथी संशोधनवादियोंके बारेमें कहा है, वह "नये" नव-ह्यूमपंथी और नव-बर्कलेपंथी संशोधनवादियों पर भी बहुत काफ़ी लागू होता है। (यह टिप्पणी स्वयं लेनिनकी है। लेनिन-ग्रंथावली—खंड १३)

श्रेष्ठ है,.. यह अतर्क्य सामग्रीसे सिद्ध हो जाता है। लेकिन कृषिमें वस्तुओंके उत्पादनका विकास अभी बहुत कमजोर है और आधुनिक गणितज्ञ और अर्थशास्त्री साधारणतः यह बहुत कम समझते हैं कि कृषिकी विभिन्न शाखाओंमें (कभी-कभी खेतोंके कारबारमें भी) कैसे भेद करना चाहिये जहाँ कि कृषिका प्रगतिशील क्रम विश्वकी आर्थिक व्यवस्थाके विनिमय में खिंचता चला आ रहा है छोटे पैमानेका उत्पादन स्वाभाविक और आत्म-निर्भर आर्थिक व्यवस्थाके ध्वसावशेषों पर जीवित रहता है।

उसका यह उत्पादन, भरण-पोषणमें अनवरत ह्रास, आये दिनकी भुख-मरी और मजदूरोंके ज़्यादा घंटोंसे, जानवरोंके गुणों और उनके प्रति व्यव-हारमें ह्राससे, संक्षेपमें, उन्हीं उपायोंसे संभव होता है जिनसे दस्तकारीने अपनेको पूँजीवादी मशीनकारोंके विरोधमें बनाये रखा था। विज्ञान और मशीनोंके प्रयोगमें प्रगतिके हर क़दमसे पूँजीवादी समाजमें अनिवार्यरूपसे और अनवरत गतिसे छोटे पैमानेके उत्पादनकी जड़ें खोखली होती जाती हैं। समाजवादी अर्थशास्त्रका यह उद्देश्य है कि इस पेचीदा और उलझे हुए क्रमकी छान-बीन करे, और छोटे पैमानेके उत्पादनके सामने यह साबित करे कि उसकी स्थितिको बनाये रखना असंभव है; पूँजीवादमें पुराने ढंगकी किसानोंकी आशा व्यर्थ है और किसानके लिये यह आवश्यक है कि वह सर्वहारा-दृष्टिकोणको अपनाये। इस प्रश्नपर विज्ञानकी दृष्टिसे संशोधनवादियोंने भारी अपराध किया है क्योंकि उन्होंने बड़े छिछले तौरसे अपनी सामग्रीका उपयोग करके संदर्भको भूलकर एकांगी-पनसे, कुछ परिणाम निकाले हैं जिनका पूँजीवादकी सम्पूर्ण व्यवस्थासे कोई सम्बन्ध नहीं है। उन्होंने राजनीतिकी दृष्टिसे भी अपराध किया है क्योंकि जानमें या अनजानमें उन्होंने किसानसे कहा है, या उसे मजबूर किया है, कि अपने मालिकका (यानी पूँजीपतियोंका) दृष्टिकोण अपनाये, उसे इसके लिये प्रेरित नहीं किया कि क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्गके दृष्टिकोणको अपनाये।

संकट और विनाशके सिद्धान्तके सम्बन्धमें संशोधनवादियोंका और भी बुरा हाल था। बहुत ही थोड़े समयके लिये और बहुत ही कम दूर देखनेवाले यह सोच सकते थे कि थोड़े वर्षोंकी औद्योगिक समृद्धि और उत्कर्षके कारण

मार्क्सके निर्देशोंका आधार बदल देना चाहिये। जीवनने बहुत जल्दी संशोधन-वादियोंको दिखा दिया कि संकटोंने अपनी अवधिके बाहर पैर नहीं रखा, समृद्धिके बाद संकटका युग भी आया। विशेष-विशेष संकटोंके रूप उनका क्रम, और उनका आकार-प्रकार बदल गया, लेकिन पूंजीवादी व्यवस्थाके अनिवार्य निर्माण तत्वके रूपमें संकट बने रहे। पूंजी और व्यापारके अन्तर्राष्ट्रीय संघोंने उत्पादनमें एकता पैदा करनेके साथ बहुत ही स्पष्ट रूपसे उत्पादनकी उच्छृंखलता, सर्वहारा जीविकाकी अस्थिरता और पूंजीके दबावको भी बढ़ाया। इस प्रकार उसने वर्गोंकी असंगतियोंमें अभूतपूर्व तीव्रता पैदा कर दी। पूंजीवाद अपने विनाशकी ओर जा रहा है, इस अर्थमें कि उसमें अलग-अलग राजनीतिक और आर्थिक संकट पैदा होते हैं; और इस अर्थमें भी कि सम्पूर्ण पूंजीवादी व्यवस्था एकदम ढहने जा रही है। दोनों ही अर्थों में उसका विनाश हालके विशाल संघों (ट्रस्टों) द्वारा बहुत स्पष्टतासे और एक बहुत बड़े पैमाने पर प्रकट हो रहा है। अभी हालमें अमरीकामें जो अर्थ-संकट उत्पन्न हुआ था, सारे योरपमें बेकारी जिस बुरी तरह फैल गयी है, और जिस औद्योगिक संकटके निकट होनेके लक्षण दिखाई दे रहे हैं, उन सब बातोंका नतीजा यह हुआ है कि संशोधनवादियोंके इन पिछले "सिद्धान्तों" को सभी भूल गये हैं, और ऐसा लगता है कि बहुतसे संशोधनवादी भी उन्हें भूल गये हैं। आवश्यकता इस बातकी है कि बुद्धिजीवियोंकी अस्थिरताका मजदूरों को जो सबक मिला है, उसे न भूलना चाहिये।

मूल्यसम्बन्धी सिद्धान्तके बारेमें इतना ही कहना है कि बोम-बावर्कके प्रति अपनी स्नेहभावनाके बहुत ही स्पष्ट संकेतोंको छोड़कर संशोधनवादियोंने और कुछ नहीं दिया है और इसलिये वे वैज्ञानिक चिन्तनकी प्रगतिपर अपनी कुछ भी छाप नहीं छोड़ गये हैं।

राजनीतिमें, संशोधनवादने सचमुच मार्क्सवादके आधार अर्थात् वर्ग-संघर्षके सिद्धान्त में संशोधन करनेका प्रयत्न किया। हमें बताया गया कि राजनीतिक स्वाधीनता, जनवाद और सार्वजनिक मताधिकार वर्ग-संघर्षका आधार नष्ट कर देते हैं और "कम्युनिस्ट-घोषणापत्र" का यह दावा कि मजदूरों का कोई देश नहीं होता, झूठा कर देते हैं। वे कहते हैं कि जनवादमें

"बहुसंख्यक जनताके मत" से शासन होता, इसलिये राज्यसत्ताको वर्ग-
प्रभुत्वका अस्त्र नहीं समझा जा सकता, न प्रतिक्रियावादियोंके विरुद्ध प्रगति-
शील सामाजिक सुधारवादी पूँजीपतियोंके सहयोग-सम्बन्धोंसे इनकार किया
जा सकता है।

संशोधनवादियोंकी इन आपत्तियोंमें कुल मिलाकर एक सामंजस्यपूर्ण
मत अवश्य बन जाता है, वही पुराना जाना-पहचाना उदारमतवाले पूँजीपतियों
का मत। उदारमतवाले बराबर कहते थे कि पूँजीवादी पार्लियामेंटगारीमें
वर्ग और वर्ग-भेद मिट जाते हैं क्योंकि मत देने और राज्य-कार्योंमें भाग
लेनेका अधिकार बिना किसी भेदभावके सभी नागरिक.के लिये रहता है।
उन्नीसवीं सदीके उत्तरार्द्धमें योरपका सारा इतिहास और बीसवीं सदीके आरम्भ
में रूसी क्रान्तिका सारा इतिहास साफ बताता है कि यह मत कैसा मूर्खतापूर्ण
है। "जनवादी" पूँजीवादकी स्वाधीनतासे आर्थिक भेदोंकी तीव्रता कम नहीं
होती वरन् बढ़ जाती है और भेद अधिक दृढ़ हो जाते हैं। पार्लियामेंटगीरीसे
यह नहीं होता कि जनवादी-प्रजातंत्र वर्ग-उत्पीड़नके अस्त्र न रहें वरन् उससे
उनमेंसे अधिकांशका यह लक्षण अच्छी तरह प्रकट हो जाता है। राजनीतिक
घटनाओंमें जितने लोग सक्रिय भाग लेते थे, उनसे बहुत बड़ी संख्यामें
जनताको इस कार्यके लिये सचेत और संगठित करके, पार्लियामेंटरी संकटों
और राजनीतिक क्रान्तियोंको समाप्त करना तो दूर, इसके विपरीत, इन
क्रान्तियोंके समय गृहयुद्धमें अत्यधिक तीव्रता ला देती है।

१८७१ के वसन्तकालमें पेरिसकी घटनाओंने और १९०५ के शीतकाल
में रूसी घटनाओंने यथासंभव स्पष्टतासे यह दिखा दिया है कि कैसे यह तीव्रता
अनिवार्य रूपसे आती ही है। फ्रांसके पूँजीपतियोंने बिना एक क्षणकी भी
दुविधाके विदेशी शत्रुसे अपना हिसाब-किताब पक्का कर लिया, उस शत्रुसे
जो सारे देशका शत्रु था, जिसने पूँजीपतियोंकी मातृभूमिको तबाह कर दिया
था। उनका उद्देश्य था सर्वहारा-आन्दोलनको कुचल देना। जो पार्लियामेंट-
गीरी और पूँजीवादी जनवादके अनिवार्य आन्तरिक द्वंद्ववादको नहीं समझता
जिससे कि झगड़ा सामूहिक हिंसासे ही निपटता है और ऐसी हिंसासे जो
हलके अवसरों से अधिक उग्र होती है—जो यह नहीं समझता, वह इस

पार्लियामेंटगीरीके बलपर बाकायदा प्रचार और आन्दोलन नहीं कर सकता और जनताको ऐसे "झगड़ों" में विजय-पूर्वक भाग लेने के लिये वास्तव में तैयार नहीं कर सकता। पश्चिममें सामाजिक सुधारवादी उदार मतसे, और इसी क्रान्तिमें उदार मतके सुधारवादसे (वैधानिक-जनवादियोंसे) सहयोग, समझौते और गुट-बंदीके अनुभवने अच्छी तरह बता दिया है कि इन तर्कोंसे जन-चेतना केवल जड़ हो जाती है, उनके संघर्षोंकी वास्तविक महत्ताको इनसे बल नहीं मिलता, वरन् वह और निर्बल हो जाती है क्योंकि ये लड़नेवालोंका उन लोगोंसे गठबन्धन कर देते हैं जो लड़नेमें कम समर्थ हैं और अधिक अस्थिर और विश्वासघाती हैं। फ्रान्सीसी मिलेरॉद-पंथने एक विशाल और वास्तवमें राष्ट्रीय पैमानेपर संशोधनवादी राजनीतिक कार्यनीतिके सबसे बड़े प्रयोगने—संशोधनवादका प्रत्यक्ष मूल्यांकन करा दिया, ऐसा मूल्यांकन जिसे दुनिया भरमें सर्वहारा वर्ग भूलेगा नहीं।

समाजवादी आन्दोलनके अन्तिम लक्ष्यके प्रति संशोधनवादकी प्रकृति उसकी आर्थिक और राजनीतिक प्रवृत्तियोंकी सहज पूरक थी। "अन्तिम लक्ष्य कुछ नहीं, आन्दोलन ही सब कुछ है"—बर्न्स्टाइनकी इस उक्तिसे अनेक लंबी युक्तियोंकी अपेक्षा संशोधनवादका सार भली भाँति प्रकट होता है। जहाँ जैसा मौका हो, वहाँ वैसा व्यवहार करना, जमानेकी घटनाओं और राजनीतिकी ओछी पेचीदगियोंके अनुकूल अपनेको तोड़-मोड़ लेना, सर्वहारा वर्गके मूल हितोंको भूल जाना, और संपूर्ण पूँजीवादी व्यवस्था तथा सम्पूर्ण पूँजीवादी विकासके मुख्य लक्षणोंको भूल जाना, और इन मूल हितको तत्कालके वास्तविक अथवा संभाव्य लाभ पर निछावर कर देना—यही संशोधनवादकी नीति है। इसी नीतिके तत्वसे ही स्पष्टतः यह परिणाम निकलता है कि संशोधनवाद अनन्त रूप धारण कर सकता है और जब कभी भी कोई नया "प्रश्न" सामने आयेगा, या कोई अप्रत्याशित और अचिन्त्य घटनाक्रम सामने आ जायगा; तो चाहे विकासकी मूल धारामें अल्पतम समयके लिये अल्पतम परिवर्तन हो, फिर भी संशोधनका कोई न कोई नया रूप ही प्रकट होगा।

आधुनिक समाजमें संशोधनवादकी जड़ें जिस वर्ग-भूमिमें पैदा हुई हैं, उससे उसकी अनिवार्यता निश्चित होती है। संशोधनवाद एक अन्तर्राष्ट्रीय

वस्तु है। न्यूनाधिक रूपसे जानकार और चिन्तनशील समाजवादीके लिये इसमें जरा भी सन्देह नहीं हो सकता कि जर्मनीमें कट्टरपंथी, और बर्न्स्टाइन-पंथी, फ्रान्समें गेस्दपंथी और जोरेपंथी (और आजकल विशेष रूपसे ब्रूसपंथी), ब्रिटेनमें सामाजिक-जनवादी फेडरेशन और स्वतंत्र लेबर पार्टी, बेल्जियममें ब्रूकेर और वान्देरवेल्द इटलीमें, समृद्धतावादी और सुधारवादी और रूसमें वोल्शेविक और मेन्शेविक—इन सबके सम्बन्ध सब कहीं तत्वतः समान हैं; यद्यपि अपनी वर्तमान अवस्थामें इन सभी देशोंकी राष्ट्रीय परिस्थितियाँ और ऐतिहासिक युगोंमें विशाल अनेकरूपता है। संसारके विभिन्न देशोंमें आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादका भेद "एक" ही लीक पर होता है, जिससे मालूम होता है कि तीस-चालीस साल पहलेसे कितनी प्रगति हो गयी है जब विभिन्न देशोंमें विभिन्न प्रवृत्तियाँ एक ही संयुक्त अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादके भीतर संघर्ष करती हैं। और "गरमदलका संशोधनवाद", जिसकी रूपरेखा अब "क्रान्तिकारी पंचायतवाद" के नामसे लेटिन देशोंमें देखा जा सकता है, मार्क्सवादमें "संशोधन" पेश करते हुए अपनेको उसके अनुकूल भी बना रहा है; "इटलीमें लाब्रियोला और फ्रान्समें लागार्देल जब-तब गलत समझे गये मार्क्ससे समझे गये मार्क्सके प्रति अपील करते हैं।"

यहाँपर हम इस संशोधनवादके सैद्धान्तिक तत्वोंका विश्लेषण नहीं कर सकते। उसने अब तक नरमवादी संशोधनवादका इतना विकास नहीं किया। अभी तक एक देशमें भी समाजवादी पार्टीसे खरी लड़ाईकी कसौटी पर नहीं उतरा है। इसलिये हम "नरमदलके संशोधनवाद" को उपरोक्त विवेचनासे सन्तोष करते हैं।

पूंजीवादी समाजवादमें संशोधनवादकी अनिवार्यताका क्या अर्थ है? राष्ट्रीय विशेषताओं और पूँजीवादके विकासकी अवस्थाके भेदसे यह अधिक व्यापक क्यों है? इसलिये कि हर पूंजीवादी देशमें सर्वहारावर्गके साथ-साथ निम्नपूँजीवादियोंका, छुटपुँजिया मालिकोंका एक बड़ा गिरोह है। पूँजीवाद का जन्म छोटे पैमानेके उत्पादनसे हुआ था और बराबर होता रहता है। पूँजीवादसे अनेक "मध्यम स्तरों" की अनिवार्य उत्पत्ति होती है (फैक्टरियों, घरेलू काम, छोटी-मोटी दूकानोंमें काम करनेवाले लोग, जो साइकिल-मोटर

जैसे वड़े उद्योग-धंधोंकी जरूरतोंको पूरा करनेके लिये देशभरमें फैले हुए हैं)। ये नये टुंटपुंजिया उत्पादक फिर सर्वहारा वर्गकी पाँतिमें लौट ही आते हैं। यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि मजदूरोंकी आम पार्टियोंमें निम्न-पूँजीवादी विचारधाराए वार-वार फूट पड़ती हैं। ऐसा होना स्वाभाविक है और सर्वहारा-क्रान्ति तक यह होता रहेगा। क्योंकि यह सोचना मूर्खता होगी कि ऐसी क्रान्तिकी सफलताके लिये अधिकांश जन-संख्याका "पूर्ण रूपसे" सर्वहारा बन जाना आवश्यक है। आज हम जिस बातका अनुभव केवल सिद्धान्त-क्षेत्रमें, मार्क्समें सैद्धान्तिक संशोधन करनेके झगड़ामें कर रहे हैं, आज जो मजदूर आन्दोलनके इक्का-दुक्का प्रश्नोंपर हो, जैसे संशोधनवादियोंसे कार्यनीति-सम्बन्धी मतभेद और इस बातपर विलगाव प्रत्यक्षमे प्रकट होता है,—यह सब और बहुत ही बड़े पैमानेपर निश्चय ही मजदूर-वर्गके सामने आयेगा। जब सर्वहारा-क्रान्ति उस समयके सभी प्रश्नोंको तीव्र रूप दे देगी और जनताका प्रत्यक्ष व्यवहार निश्चित करनेके लिये तात्कालिक महत्वके प्रश्नोंपर सारा मतभेद केन्द्रित कर देगी, और लड़ाईकी सरगर्मीमें यह जरूरी हो जायगा कि दोस्तको दुश्मनसे जुदा किया जाय, और दुश्मन पर नपा-तुला वार करनेके लिये बुरे साथियोंको निकाल बाहर किया जाय, तब मजदूर-वर्गको इस सबका सामना करना पड़ेगा।

१९वीं सदीके अन्तमें संशोधनवादसे क्रान्तिकारी मार्क्सवादका सैद्धान्तिक संग्राम उस सर्वहारा वर्गके महान् क्रान्तिकारी युद्धोंकी भूमिका मात्र है जो क्षुद्र और स्वार्थी लोगोंके संशयों और निर्बलताओंके बावजूद अपने उद्देश्यकी पूर्ण सिद्धिकी ओर बढ़ता जा रहा है।

अप्रैल, १९०८



मार्क्सवादका ऐतिहासिक भविष्य

मार्क्स के निर्देशोंमें मुख्य वस्तु सोशलिस्ट समाजके निर्माताके रूपमें सर्वहारा-वर्गकी ऐतिहासिक भूमिकाकी व्याख्या है। क्या मार्क्सकी व्याख्याके बाद संसारके घटनाक्रमने इस निर्देशका समर्थन किया है?

सबसे पहले मार्क्सने, १८४४ मे यह बात कही थी। १८४८ में प्रकाशित मार्क्स और एंगेल्सके कम्युनिस्ट घोषणापत्रने , इस निर्देशकी संगत और सुव्यवस्थित व्याख्या की और यह व्याख्या अब तक सर्वश्रेष्ठ बनी हुई है। तबसे अब तकका विश्व-इतिहास तीन मुख्य भागोंमें बाँटा जा सकता है : (१) १८४८ की क्रान्तिसे पेरिस कम्यून (१८७१) तक; (२) पेरिस कम्यूनसे रूसी क्रान्ति (१९०५) तक, (३) रूसी क्रान्तिके बादसे।

इन युगोंमें मार्क्सकी बातोंका क्या हुआ ? इस ओर हम थोड़ा ध्यान दें।

(१)

पहले युगके आरंभमें निश्चय ही मार्क्सकी विचारधाराका प्राधान्य नहीं रहा। समाजवादकी अनेक धाराओं अथवा शाखा-प्रशाखाओंमें से यह भी एक थी। समाजवादके जिन रूपोंकी प्रधानता रही, वे ऐसे थे जो बहुत-कुछ हमारे लोकवादियों (नारोद्नीकी) से मिलते-जुलते हैं। इन्होंने ऐतिहासिक आन्दोलनके भौतिकवादी आधारको नहीं समझा; ये पूँजीवादी वर्गमें प्रत्येक वर्गकी भूमिका और महत्ताको निश्चित करनेमें असमर्थ रहे; ऊपरसे समाजवादी लगनेवाले "जनता", "न्याय", "अधिकार" आदिके शब्दजालसे जनवादी पुनर्संगठनके पूँजीवादी तत्वको वे छिपाते रहे।

१८४८ में मार्क्सके पहलेके समाजवादका इन बहुरंगी और कलकल ध्वनिसे पूर्ण धाराओंपर क्रान्तिने घातक प्रहार किया। सभी देशोंमें क्रान्तिने सभी वर्गोंका प्रत्यक्ष व्यावहारिक रूप दिखा दिया। जून १८४८ में पेरिसमें, जब प्रजातंत्रवादी पूँजीपतियोंने मजदूरोंपर गोली चलायी, तो यह तय हो गया कि एक सर्वहारा वर्गको ही प्रकृति समाजवादी है। उदार मतके पूँजीपति इस वर्गकी स्वाधीनतासे जितना ज़्यादा डरते थे, उतना किसी भी तरहकी प्रतिक्रियासे न डरते थे। कायर उदारपंथ प्रतिक्रियाके सामने घुटने टेक देता है। किसान सामंतशाहीके ध्वंसावशेषोंके दूर करनेसे संतुष्ट हो जाते हैं और व्यवस्थाका दम भरने लगते हैं। और केवल जब-तब मजदूरोंके जनवाद और पूँजीवादी उदारपंथके बीचमें झोंके खाते हैं। वर्ग-हीन समाजवाद और वर्ग-हीन राजनीतिके सभी सिद्धान्त प्रलापमात्र सिद्ध होते हैं।

पेरिसके कम्यून (१८७१) से पूँजीवादी सुधारोंकी प्रगतिका अन्त

होता है। केवल सर्वहारा वर्गकी वीरतासे प्रजातंत्र सुदृढ़ हुआ, राज्य-संगठन का वह रूप सुदृढ़ हुआ जिसमें वर्ग-सम्बन्ध अपने नग्नतम रूपमें प्रकट होते हैं। योरपके और सभी देशोंमें अधिक उलझे हुए और अधिक अपूर्ण विकाससे पूँजीवादी समाजका एक ही सा निर्माण होता है। क्रान्ति और विस्फोटके प्रथम युग (१८४८-७१) के बाद मार्क्ससे पहलेके समाजवादकी मृत्यु हो जाती है। स्वतंत्र सर्वहारा पार्टियोंका जन्म होता है और उनके साथ पहले इण्टरनेशनल (१८६४-७२) और जर्मन सामाजिक-जनवादका।

(२)

दूसरा युग (१८७२-१६०४), पहलेसे इस बातमें भिन्न है कि वह "शान्तिपूर्ण" है; उसमें क्रान्तियोंका अभाव है। पश्चिममें पूँजीवादी क्रान्तियोंका दौर चल चुका है; पूरब अभी उनके लिये तैयार नहीं है।

पश्चिममें भावी परिवर्तनोंके युगके लिये शान्तिपूर्ण तैयारियोंका दौरा शुरू होता है। हर जगह सोशलिस्ट पार्टियाँ बनती हैं जो तत्वतः सर्वहारा-पार्टियो हैं। वे पूँजीवादी पार्लियामेंटगीरीसे काम लेना सीखती हैं, अपने पत्र प्रकाशित करना, अपनी शिक्षा-संस्थाएँ, ट्रेड यूनियन और सहकार संस्थाएँ चलाना सीखती हैं। मार्क्सके विचारोंकी पूर्ण विजय होती है और उनका चारों ओर प्रचार होता है। सर्वहारा वर्गकी शक्तियोंके चयन और संगठनका क्रम धीरे-धीरे परन्तु निश्चित गतिसे चलता है, वैसे ही भावी युद्धके लिये तैयारी होती है।

इतिहासकी ऐसी ही द्वंद्वात्मक गतिशीलता है कि मार्क्सवादकी सैद्धान्तिक विजयसे उसके शत्रुओंको मार्क्सवादियोंका वेश धारण करना पड़ता है। सड़ा-गला उदारपंथ समाजवादी अवसरवादके रूपमें फिर नया जीवन पाना चाहता है। महान् युद्धोंकी तैयारीसे वे समझते हैं कि इन युद्धोंसे छुट्टी मिल गयी। गुलामोंकी स्थितिमें सुधार होता है जिससे कि वे पूँजीवादी गुलामीसे लड़ सकें, तो वे इसका यह मतलब लगाते हैं कि गुलाम अपनी स्वाधीनताके अधिकारोंको पैसे-पैसे पर बेच रहे हैं। कायरतासे वे "सामाजिक शान्ति" (अर्थात् गुलामोंके मालिकोंसे शान्ति), वर्ग-संघर्षके त्यागका अर्थ लगाते हैं।

समाजवादी पार्लियामेंटगीरियों, मजदूर-आन्दोलनके विभिन्न पदाधिकारियोंमें, और "हमदर्द" बुद्धिजीवियोंमें इन्हें बहुतसे अनुयायी मिल जाते हैं।

(३)

"सामाजिक शान्ति" और विध्वंसकी अनावश्यकताके गीत गाते हुए अवसरवादी अभी अपना मुँह बन्द भी न कर पाये थे कि एशियामें संसारके सबसे लोमहर्षण विध्वंसका मुँह खुल गया। रूसी क्रान्तिके बाद तुर्की, ईरान और चीनमें क्रान्तियाँ हुई। हम इन्हीं विस्फोटों और योरपपर इनके "प्रभाव" के दौरसे होकर गुजर रहे हैं। चीनी प्रजातंत्रको देखकर बहुतसे "सभ्य" बाघ अपने दाँत पैने कर रहे हैं। उसका जो भी भविष्य हो, परन्तु संसारकी कोई भी शक्ति एशियामें दासप्रथा फिर कायम नहीं कर सकती, न एशियाई और अर्ध-एशियाई देशोंमें जन-साधारणके साहसपूर्ण जनवादका समूल नाश कर सकती है।

कुछ लोगोंने जन-संघर्षकी तैयारी और प्रगतिकी परिस्थितियोंकी ओर ध्यान नहीं दिया, इसलिये वे निराशा और अराजकवादसे दब गये क्योंकि योरपमें पूँजीवादसे निर्णयात्मक संघर्षकी घड़ी दूर तक टल गयी थी। अब हम देखते हैं कि यह अराजकवादी निराशा कितनी अदूरदर्शी और कायरतापूर्ण थी।

अपनी आठ अरब जनताके साथ एशिया भी उन्हीं आदर्शोंके लिये संघर्षमें उतर आया है, जिनके लिये योरप लड़ रहा था। इस बातसे हमारी हिम्मत बढ़ती है, न कि पस्तहिम्मती पैदा होती है।

एशियाई क्रान्तियोंने भी हमें दिखा दिया है कि उदारपंथ कितना गिरा हुआ और लचर है, जनवादी सर्वसाधारणकी स्वाधीनताका क्या अनुपम महत्व है, और कैसे सर्वहारा और पूँजीवादी वर्गोंके बीचमें अन्तरकी स्पष्ट रेखा खिंची हुई है। योरप और एशियाके अनुभवोंके बाद अगर कोई वर्ग-हीन राजनीति और वर्गहीन समाजवादकी बात करता है, तो वह बस पिंजड़ेमें बंद किये जानेका काम करता है जिससे कि आस्ट्रेलियाके कंगारूके साथ-साथ उसका भी प्रदर्शन हो सके।

एशियाके बाद योरपमें भी हलचल शुरू हुई है, लेकिन एशियाई ढंगसे

नहीं । १८७२-१६०४ का "शान्तिपूर्ण" युग पीछे पड़ गया है, और वह अब कभी लौट कर न आयेगा । रहन-सहनकी महँगाई और व्यापार-संघोंके बोझसे आर्थिक संघर्षमें अभूतपूर्व तीव्रता आ गयी है जिससे ब्रिटिश मजदूर भी, जो उदारपंथसे सबसे ज्यादा बरगलाये गये हैं, अब जाग उठे हैं । हमारी आँखोंके सामने "पुरानपंथी" बनियों और ठाकुरोंके देश जर्मनीमें भी राजनीतिक संकट विषम होता जा रहा है । हथियारबन्दीके लिये जो ताबड़तोब तैयारियाँ हो रही हैं, उनसे और साम्राज्यवादकी नीतिसे, आधुनिक योरपकी "सामाजिक शान्ति" बारूदके ढेरकी तरह है । और सभी पूंजीवादी पार्टियोंका ह्रास और सर्वहारा वर्गकी सुदृढ़ता निश्चित रूपसे बढ़ती जाती है ।

मार्क्सवादके अभ्युदय कालसे विश्व-इतिहासके इन तीन महान युगोंमेंसे हर एकने उसे सिद्ध करनेके लियेनयी सामग्री दी है और उन्हे नया विजय-गौरवप्रदान किया है । परन्तु मार्क्सवादको अर्थात् सर्वहारा वर्गकी विचार धाराको, आगामी ऐतिहासिक युगमें अभी एक और भी गौरवपूर्ण विजय मिलनेको है ।

१४ मार्च, १६१३



लेनिन और मार्क्सवाद

(अमरीकासे रूस जानेवाले पहले श्रमिक-प्रतिनिधि-मंडलसे स्तालिनकी भेंट का अंश)

(प्रतिनिधि-मंडलके प्रश्न और स्तालिनके उत्तर)

(प्रकाशकोंको इस भेंटका अंग्रेजीमें लिखा हुआ विवरण प्राप्त नहीं हुआ, इसलिये १५ सितम्बर, १६२७ के प्रावदामें प्रकाशित रूसी रिपोर्टसे अनुवाद कर लिया गया है । इसलिये अमरीकी प्रतिनिधियोंके शब्द (अंग्रेजी अनुवादमें—हिं. अनु.) ऐसे नहीं थे यद्यपि उनका सार वही है । यह भेंट ६ सितम्बर, १६२७ को हुई थी ।—सं.)

प्रश्न १ : लेनिन और कम्युनिस्ट पार्टीने प्रत्यक्ष व्यवहारमें मार्क्सवादमें किन नये सिद्धान्तोंको जोड़ा है ? क्या यह कहना उचित होगा कि लेनिन

"रचनात्मक क्रान्ति" के समर्थक थे और मार्क्स आर्थिक शक्तियोंके विकासके पूरा हो जानेकी राह देखनेके पक्षमें थे?

उत्तर: मेरा विचार है कि लेनिनने मार्क्सवादमें कोई "नये सिद्धान्त नहीं जोड़े" न उन्होंने मार्क्सवादके "पुराने" सिद्धान्तोंसे किसीको छोड़ा। वह मार्क्स और एंगेलसके अनुयायी और शिष्य संगत रूपसे थे और बने रहे; परन्तु लेनिनने मार्क्स और एंगेल्सके विचारोंको कार्य रूपमें परिणत ही नहीं किया, उन्होंने इन विचारोंको और आगे बढ़ाया। इनका क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह है कि उन्होंने उन्हें विकासकी नयी परिस्थितियोंके साथ, पूँजीवादके नये रूपके साथ, साम्राज्यवादके साथ, आगे बढ़ाया। इसका यह अर्थ है कि मार्क्स और एंगेल्सने जो कुछ निर्माण किया था, और पूँजीवादके प्राकसाम्राज्यवादी युगमें जिसका वे निर्माण कर सकते थे, उसे देखते हुए लेनिनने वर्ग-संघर्षकी नयी परिस्थितियोंमें मार्क्सके विचारोंको आगे बढ़ाते हुए, मार्क्सवादकी साधारण निधिको नयी चीजें दीं। इसके अलावा मार्क्सवादको लेनिनकी देनका आधार पूर्णरूपसे मार्क्स और एंगेल्स द्वारा प्रतिष्ठित सिद्धान्त ही हैं। इस भावसे हम लेनिनवादको साम्राज्यवाद और सर्वहारा-क्रान्तियोंके युगका मार्क्सवाद कह सकते हैं। यहाँ पर मैं कुछ उन प्रश्नोंका जिक्र करूंगा, जिनके क्षेत्रमें लेनिनने मार्क्सके विचारोंको और आगे बढ़ाते हुए नयी चीजें दीं:

पहला प्रश्न, एकाधिकारी पूँजीवादका है, अर्थात् पूँजीवादके नये रूप साम्राज्यवादका है। "पूँजी" में मार्क्स और एंगेल्सने पूँजीवादके आधारका विश्लेषण किया था। लेकिन मार्क्स और एंगेल्स पूँजीवादके उस युगमें थे जब पूँजीवादका समतल विकास हो रहा था और सारे संसारमें उसका शांतिपूर्ण प्रसार हो रहा था। पूँजीवादका यह पुराना दौर पूरा हुआ उन्नीसवीं सदीके अन्तमें और बीसवीं सदीके आरम्भमें। तब मार्क्स और एंगेल्सका देहान्त हो चुका था। यह स्पष्ट है कि पूँजीवादके पुराने दौरके बाद जो नया दौर शुरू हुआ, उससे पूँजीवादके विकासकी जो नयी परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं, उनका अनुमान ही मार्क्स और एंगेल्सके लिये संभव था। विकासके साम्राज्यवादी और एकाधिकारी दौरमें पूँजीवादके समतल विकास

की जगह ऊबड़-खाबड़ और विस्फोटपूर्ण विकासने ले ली। पूँजीवादकी असंगतियाँ और विकासकी विषमता और उभर कर सामने आ गयी। विकासकी अतिशय विषमताकी परिस्थितियोंमें पूँजी लगानेके लिये बाजारों और क्षेत्रोंके लिये जो संघर्ष हुआ, उससे समय-समय पर संसारके तथा अपने-अपने क्षेत्र के बँटवारेके लिये समय-समय पर साम्राज्यवादी युद्ध अनिवार्य हो गये। लेनिनने जो महत्वपूर्ण कार्य किया और फलतः उनकी जो देन थी, वह यह कि "पूँजी" में जिन मुख्य सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया था, उन्हींके आधार पर उन्होंने साम्राज्यवादका महत्वपूर्ण मार्क्सीय विश्लेषण किया कि वह पूँजीवादका अन्तिम रूप है। उन्होंने उसके फोड़ोंको दिखाया और बताया कि किन परिस्थितियोंमें उनका नाश होगा। इस विश्लेषणके आधार पर ही लेनिनकी यह प्रसिद्ध धारणा निर्भर थी कि साम्राज्यवादकी परिस्थितियोंसे विभिन्न पूँजीवादी देशोंमें समाजवादकी विजय होती है।

दूसरा प्रश्न, सर्वहारा एकाधिपत्यका है। सर्वहारा-एकाधिपत्य सर्वहारा वर्गका राजनीतिक प्रभुत्व है, और पूँजीके शासनका बलपूर्वक अन्त करनेका साधन है। इस आधारभूत विचारका सृजन मार्क्स और एंगेल्सने किया था। इस क्षेत्रमें लेनिनकी देन यह थी कि (१) पेरिस कम्यून और रूसी क्रान्ति के अनुभवका उपयोग करते हुए, उन्होंने पता लगाया कि सर्वहारा एकाधि-पत्यकी राज्यसत्ताका रूप सोवियत ढंगका शासन-तंत्र है; (२) सर्वहारा वर्गके सहयोगियोंकी समस्याको ध्यानमें रखते हुए उन्होंने सर्वहारा-एकाधि-पत्यके सूत्रका अर्थ लगाया और उन्होंने सर्वहारा-एकाधिपत्यकी यह व्याख्या की कि वह वर्ग मैत्रीका एक विशेष रूप है जिस मैत्रीमें नेतृत्व सर्वहारा वर्गका होता है और अनुगमन सर्वहारासे भिन्न शोषित वर्गों—किसान आदिका—होता है; (३) उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि वर्ग-युक्त समाजमें सर्वहारा-एकाधिपत्य जनवादका एक उच्चतर रूप है अर्थात् सर्वहारा जनवाद बहुसंख्यक लोगों (शोषकों) के हितोंका प्रतिनिधित्व करता है जब कि पूँजीवादी जनवाद अल्पसंख्यक लोगों (शोषिकों) के हितोंको प्रकट करता है।

तीसरा प्रश्न, सर्वहारा-एकाधिपत्यके युगमें, पूँजीवादी राज्योंसे घिरे हुए देशमें, पूँजीवादसे समाजवादकी ओर संक्रमणके युगमें, समाजवादके सफल

निर्माणके उपायों और रूपोंका है। मार्क्स और एंगेल्सका विचार था कि सर्वहारा-एकाधिपत्यका युग बहुत कुछ एक लंबा युग होगा जिसमें क्रान्तिकारी संघर्षों और गृहयुद्धोंकी भरमार होगी। उस युगमें एक नया सोशलिस्ट समाज स्थापित करनेके लिये शक्ति-प्राप्त सर्वहारा वर्ग आवश्यक आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और संगठनात्मक उपाय करेगा। पुराने समाजके बदले इस समाजमें न वर्ग होंगे, न राज्य सत्ता (स्टेट) होगी। लेनिनका आधार पूर्ण रूपसे मार्क्स और एंगेल्सकी ये मौलिक धारणाएँ ही थीं। इस क्षेत्रमें लेनिन की देन यह थी कि :

(१) उन्होंने सिद्ध किया कि सर्वहारा—एकाधिपत्यका देश चारों ओरके पूँजीवादी राज्योंके सैनिक हस्तक्षेपसे न कुचल दिया जाय, तो वहाँ पूर्ण सोशलिस्ट समाजका निर्माण संभव है; (२) उन्होंने आर्थिक नीति ("नवीन आर्थिक नीति") का स्पष्ट मार्ग निर्धारित किया जिससे कि सर्वहारा वर्ग आर्थिक महत्वकी चीजों (उद्योग-धन्धों, भूमि, यातायात, बैंकों आदि) पर अधिकारी होनेसे समाजवादी उद्योग-धन्धोंसे कृपिका संबंध ("उद्योग-धन्धों और किसानोंकी खेतीका सम्बन्ध") स्थापित करता है, और इस प्रकार राष्ट्रकी संपूर्ण आर्थिक व्यवस्थाको समाजवादकी ओर ले चलता है; (३) उन्होंने वे स्पष्ट मार्ग बताये जिनसे किसानोंका बहुभाग सहकार-संस्थाओं द्वारा धीरे-धीरे समाजवादी निर्माण के अनुकूल बन जाता है। ये सहकार-संस्थाए सर्वहारा एकाधिपत्यके हाथमें एक प्रकट अस्त्र बन जाती हैं जिससे कि किसानोंकी छुटपुँजिया आर्थिक व्यवस्थाको बदला जा सकता है और किसानोंके प्रमुख मार्गको समाजवादके अनुकूल पुन. शिक्षित किया जा सकता है।

चौथा प्रश्न, क्रान्तिमें, सभी जन-क्रान्तियोंमें—जारशाहीके विरुद्ध क्रान्तिमें तथा पूँजीवादके विरुद्ध क्रान्तिमें—सर्वहारावर्गकी प्रधानता है। मार्क्स और एंगेल्सने सर्वहारा-प्राधान्यकी धारणाकी मुख्य रूपरेखा प्रस्तुत कर दी थी। लेनिनकी नयी देन यही थी कि उन्होंने इस रूपरेखाको सर्वहारा-प्राधान्यकी सामंजस्यपूर्ण व्यवस्थामें विकसित किया; जारशाही और पूँजीवादके ध्वंसकी लड़ाईमें ही नहीं, वरन् सर्वहारा-एकाधिपत्यमें समाजवादके निर्माण-कार्यमें

शहर और देहातके मेहनतकशोंके सर्वहारा-नेतृत्वकी सामंजस्यपूर्ण व्यवस्थामें उन्होंने उस रूपरेखाको विकसित किया। यह सभी जानते हैं कि लेनिन और उनकी पार्टीके कारण रूसमें सर्वहारा-प्राधान्यकी कल्पना कुशलतासे चरितार्थ की गयी। और कारणोंमें यह भी एक कारण है जिससे रूसमें सर्वहारा-वर्गके हाथमें शक्ति आ गयी। पिछली क्रान्तियोंमें बहुधा यही हुआ था कि मोर्चेपर सारी लडाई मजदूर लडे थे, उन्होंने अपना खून बहाया था, पुरानी व्यवस्थाका नाश किया था, लेकिन शासन-शक्ति पूँजीपतियोंके हाथमें आ गयी जो मजदूरोंका शोषण-उत्पीडन करते थे। इंग्लैण्ड और फ्रान्समें यही हुआ। यही जर्मनीमें हुआ। लेकिन रूसमें कुछ और ही हुआ। रूसमें मजदूर केवल क्रान्तिके अगले लडाकू जत्थे न थे। क्रान्तिके अगले लडाकू जत्थे होते हुए भी रूसी सर्वहारा वर्गने प्राधान्यके लिये, शहर और देहातकी समूची शोषित जनताके राजनीतिक नेतृत्वके लिये प्रयास किया, उस जनताको अपनी ओर समेटा और पूँजीपतियोंसे उसे अलग किया, और इस प्रकार पूँजीवादी वर्गको राजनीतिक दृष्टिसे, अकेला छोड दिया। शोषित जनताका नेता होनेके कारण रूसी सर्वहारा वर्ग इस बातके लिये बराबर लडा कि वह अपने हाथोंमें शक्ति ले ले और पूँजीपतियों तथा पूँजीवादके विरुद्ध अपने हितके लिये उसका उपयोग करे। यही कारण है कि रूसमें क्रान्तिके प्रत्येक शक्तिशाली विस्फोटसे, जैसे कि अक्तूबर १९०५ में और फरवरी १९१७ में, नये शासनतंत्रके बीजरूपमें श्रमिक-प्रतिनिधियोंके सोवियतोंका जन्म हुआ जिनका काम आगे पूँजीपतियोंको कुचल देना था, इसके विपरीत पुराने शासन-तन्त्रका रूप था पूँजीवादी पार्लियामेंट जिसका काम होता था सर्वहारा-वर्गको कुचल देना। दो मौकोंपर रूसमें पूँजीपतियोंने पूँजीवादी पार्लियामेंटको फिर प्रतिष्ठित करने और सोवियतोंको समाप्त करनेकी चेष्टा की: अगस्त १९१७ में, बोल्शेविकों द्वारा शासनसत्ता पर अधिकार पानेके पहले "प्रारम्भिक पार्लियामेंट" के समय, और जनवरी १९१८ में सर्वहारा वर्ग द्वारा शासनसत्ता पर अधिकार पानेके बाद "विधान-सभा" के समय। इन दोनों ही अवसरों पर ये प्रयास विफल हुए। क्यों? इसलिये कि पूँजीपति राजनीतिक दृष्टिसे अकेले पड चुके थे।

मेहनतकशोंकी विशाल सेना सर्वहारा वर्गको ही क्रान्तिका एकमात्र नेता मानती थी और जनता सोवियतोंको परख चुकी थी कि वे अपने ही मजदूरोंकी सरकार हैं। सर्वहारा वर्गके लिये इन सोवियतोंका स्थान पूँजीवादी पार्लियामेण्टको दे देना आत्मघातके बराबर होता। इसलिये कोई अचरज नहीं कि रूसमें पूँजीवादी पार्लियामेण्टगीरीकी जड़ नहीं जमी। इसीलिये रूसमें क्रान्तिसे सर्वहारा-शासन प्रतिष्ठित हुआ। यह फल क्रान्तिमें सर्वहारा-प्राधान्य की लेनिनवादी व्यवस्थाको लागू करनेका था।

पाँचवाँ प्रश्न, जातियों और उपनिवेशोंका था। आयरलैण्ड, हिन्दुस्तान तथा चीनकी और पोलैण्ड तथा हंगेरी जैसे मध्य योरपके देशोंकी सामयिक घटनाओंकी छान-बीन करते हुए मार्क्स और एंगेल्सने जातीय और औपनिवेशिक प्रश्नके आधारभूत मूल विचारोंको विकसित किया। लेनिनने अपनी कृतियोंमें इन्हीं विचारोंको अपना आधार माना। इस क्षेत्रमें लेनिनकी नयी देन थी कि : (१) उन्होंने साम्राज्यवादके युगमें जातीय और औपनिवेशिक क्रांतियोंके संबंधमें सुव्यवस्थित धारणाओंके रूपमें इन विचारोंका संकलन किया; (२) उन्होंने साम्राज्यवादके ध्वंसके प्रश्नके साथ जातीय और औपनिवेशिक प्रश्नको जोड़ दिया; और (३) उन्होंने बताया कि जातीय और औपनिवेशिक प्रश्न अन्तर्राष्ट्रीय सर्वहारा क्रांतिका आनुषंगिक प्रश्न है।

अन्तिम प्रश्न, सर्वहारा-वर्गकी पार्टीका है। मार्क्स और एंगेल्सने पार्टी की कल्पनाकी मुख्य रूपरेखा दे दी थी कि वह सर्वहारा-वर्गका अग्रदल है जिसके (पार्टीके) बिना सर्वहारा-वर्ग अपना उद्धार नहीं कर सकता था, शासन-सत्ता पर अधिकार नहीं कर सकता था अथवा पूँजीवादी समाजका पुनर्निर्माण नहीं कर सकता था। इस सिद्धांतमें लेनिनकी नयी देन यह थी कि उन्होंने इस रूपरेखा को आगे विकसित किया और साम्राज्यवादके युगमें सर्वहारा-संघर्षकी नयी परिस्थितियों पर उसे लागू किया और दिखाया कि : (१) सर्वहारा-संगठनके दूसरे रूपों (मजदूर यूनियन, सहकार-संस्थाओं, राज्यके संगठन) की अपेक्षा पार्टी मजदूरोंके वर्ग-संगठनका उच्चतर रूप है; इसके अलावा उसका कर्तव्य है कि वह इन संगठनोंके कार्यमें समता उत्पन्न करे और उनका संचालन करे; (२) पार्टीके निर्देश-शक्ति होने पर ही सर्वहारा एकाधिपत्य चारितार्थ

हो सकता है; (३) सर्वहारा वर्गका एकाधिपत्य तभी पूर्ण हो सकता है, जब उसका नेतृत्व एक ही पार्ट, कम्युनिस्ट पार्टी करे, जो किसी दूसरी पार्टीके साथ नेतृत्व में साझा नहीं करती, जिसे यह साझा करना न चाहिये; और (४) पार्टीमें कठोर अनुशासनके बिना सर्वहारा एकाधिपत्यका यह कार्य कि वह शोषकोंको कुचले और वर्गयुक्त समाजको सोशलिस्ट समाजमें परिवर्तित करे, पूरा नहीं हो सकता।

अपनी कृतियोंमें लेनिनकी मुख्यतः यही देन है; उन्होंने मार्क्सके सिद्धांतों को इस तरह विकसित और अधिक स्पष्ट किया कि साम्राज्यवादके युगमें सर्वहारा-संघर्षकी नयी परिस्थितियों पर वे लागू हो सकें।

इसीलिये हम कहते हैं कि लेनिनवाद, साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रांतियोंके युगका मार्क्सवाद है।

इससे स्पष्ट है कि लेनिनवाद मार्क्सवादसे अलग नहीं किया जा सकता, मार्क्सवादसे उसका विरोध दिखाना तो दूरकी बात है।

प्रतिनिधि मंडलके प्रश्नमें यह भी पूछा गया है : "क्या यह कहना उचित होगा कि लेनिन 'रचनात्मक क्रांति' के समर्थक थे और मार्क्स आर्थिक शक्तियोंके विकासके पूरा हो जानेकी राह देखनेके पक्षमें थे ?" मेरी समझमें ऐसा कहना बिल्कुल गलत है। मेरा विचार है कि प्रत्येक जन-क्रांति, यदि वह वास्तवमें जन-क्रांति है, तो वह रचनात्मक क्रांति होती है; क्योंकि पुरानी व्यवस्थाका ध्वंस करके नयीका निर्माण करती है। अवश्य ही ऐसी क्रांतियोंमें (यदि हम उन्हें क्रांति कह सकें) जैसी, उदाहरणके लिये अल्बानियामें, एक जातिसे दूसरी जातिकी "बगावत" के खिलवाड़के रूपमें होती है, कुछ भी रचनात्मक नहीं होती। लेकिन मार्क्सवादियोंने इस तरहकी "बगावत" के खिलवाड़को क्रांति कभी नहीं माना। स्पष्ट है कि हम इस तरह की "बगावतों" पर विचार नहीं कर रहे हैं। वरन् सामूहिक जन-क्रान्तियोंपर, शोषित वर्गोंके विद्रोहपर, विचार कर रहे हैं। इस तरहकी क्रान्ति रचनात्मक होगी ही। मार्क्स और लेनिन इस तरहकी क्रान्तिके समर्थक थे, एकमात्र इसी तरहकी क्रान्तिके। अवश्य ही, यहाँ यह कहना उचित है कि इस तरहकी क्रान्तिका उद्रेक सभी परिस्थितियोंमें नहीं हो सकता; उसका उद्भव कुछ अनुकूल आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियोंमें ही संभव है।



टिप्पणियाँ

पृष्ठ ४; हेगेल (१७७०-१८३१)—जर्मनीके शास्त्रीय दर्शनका सबसे महत्वपूर्ण प्रतिनिधि। उसने द्वन्द्ववादके नियमोंका बड़ी सूक्ष्मतासे अध्ययन किया और सबसे पहले प्रकृति, इतिहास और चेतनाको एक विकासक्रमके रूपमें देखा। मार्क्स हेगेलके ही शिष्य थे। बादमें उन्होंने हेगेलके द्वन्द्ववादको आदर्शवादसे मुक्त करके उसे सही भौतिकवादी रूप दिया।

पृष्ठ ४; प्रूधों (१८०३-१८६५)—निम्न-पूँजीवादियोंका अराजकतावादी सिद्धान्तवेत्ता। प्रूध के विचारोंका फ्रान्सके मजदूरों पर बहुत असर था। मार्क्सने उनके निम्न-पूँजीवादी विचारोंकी कड़ी आलोचना की थी। उनकी "दर्शनकी निर्धनता" नामक पुस्तक प्रूधोंकी "निर्धनताका दर्शन" नामक पुस्तकके उत्तरमें लिखी गयी थी।

पृष्ठ ४; कम्युनिस्ट लीग—क्रांतिकारी मजदूरोंका गुप्त संगठन। १८४८ में मार्क्स और एंगेल्सने उसका नेतृत्व ग्रहण किया और उसकी कार्रवाइयाँ बढ़ गयीं। संगठनका उद्देश्य था पूँजीवादी सरकारका अंत और सर्वहारा राज्यकी स्थापना। १८४८ में ही लीगने प्रसिद्ध कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र प्रकाशित किया जिसे मार्क्स और एंगेल्सने तैयार किया था।

पृष्ठ ६; इंटरनेशनल वर्किंगमेन्स एसोसियेशन(प्रथम इंटरनेशनल)—२८ सितम्बर, १८६४ को मार्क्सकी अध्यक्षतामें लन्दनमें इसकी स्थापना हुई। उसका उद्देश्य यह था कि मजदूर वर्गकी एक संयुक्त अन्तर्राष्ट्रीय पार्टीकी स्थापना हो जो दुनियाभरके मजदूर आन्दोलनका नेतृत्व कर सके। उसकी स्थापना और उसका नेतृत्व मार्क्सकी क्रान्तिकारी कार्यवाहियों का आदर्श उदाहरण है। सन् १८७२ में उसका दफ्तर न्यूयार्क चला गया जहाँ उसका कुछ दिनों बाद अंत हो गया। १८८९ में एंगेल्सने दूसरे इंटरनेशनलकी स्थापना की जिसका पहले महायुद्धमें अंत हो गया। तीसरे इंटरनेशनलकी स्थापना लेनिनने १९१९ में की जिसे १९४३ में भंग कर दिया गया। (इंटरनेशनलके विवरणके लिये देखिये, "लेनिनवादके मूल सिद्धान्त"—हिन्दी रण, जन-प्रकाशन गृह लि० बम्बई।)

पृष्ठ ६; **पेरिस कम्यून**—१८७१–१८७२ के फ्रैंको-प्रशियन युद्धमें फ्रान्सीसियोंकी बुरी तरह हार हुई और जर्मन पेरिसके द्वार तक आ पहुँचे। फ्रान्सकी पूँजीवादी सरकार शहर छोड़कर भाग गयी। तब पेरिसके मजदूरोंने अपने नगरकी रक्षाका प्रण किया। उन्होंने एक क्रान्तिकारी समिति बनायी और कम्यूनकी, अर्थात् मजदूर-राज्यकी, घोषणा कर दी। भगोड़ी पूजीवादी सरकार इससे डर गयी और उसने जर्मन से संधि करके पेरिस पर आक्रमण किया। पेरिस कम्यूनके रक्षक ७२ दिन तक वीरतासे लड़े; पर अंतमें उनकी हार हुई। संसारका पहला मजदूर राज्य मिट गया। मार्क्सने पेरिसके मजदूरोंकी क्रान्तिकारी क्षमता और उनके आत्मोत्सर्गकी बहुत प्रशंसा की थी।

पृष्ठ ६; **बाकुनिनपंथी**—बाकुनिन (१८१४-१८७०) नामक एक रूसी क्रान्तिकारीके अनुयायी। वह अराजकवादके संस्थापकोंमें था। शुरूमें वह हेगेलका अनुयायी था और उसे अपने क्रान्तिकारी कार्योंके लिये रूससे निकाल दिया गया था। १८६६ में वह प्रथम इंटरनेशनलमें शामिल हो गया। पर वह सदा मार्क्सका विरोधी रहा। उसके खिचड़ी सिद्धान्तोंकी मार्क्सने बड़ी खबर ली है।

पृष्ठ १६; **डार्विन** (१८०६-१८८२)—प्रसिद्ध प्राणीशास्त्री। उसने जीव विज्ञानमें विकासके सिद्धान्तकी खोज की। १६वीं शताब्दीके सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिकोंमें उसकी गिनती है और उसके सिद्धान्तोंने विचार-जगत्में बड़ी भारी क्रान्ति की है।

पृष्ठ १६; **फायरबाख** (१८०४-१८७२)—मार्क्सका समकालीन भौतिकवादी दार्शनिक। मार्क्सकी भाँति वह भी हेगेलका शिष्य था; बादमें वह भौतिकवादी हो गया। मार्क्सके विचारों पर फायरबाखका असर था। पर मार्क्सने फायरबाखके भौतिकवादकी कमजोरियाँ बताते हुए उसकी तीव्र आलोचना की थी।

है। पर वह पूँजीवादी उत्पादनके ऐतिहासिक स्वरूपको नहीं समझता था और उसे चिरन्तन मानता था।

पृष्ठ ५६; लीबनेख्ट (१८२६-१६००)—जर्मन सामाजिक जनवादका एक प्रमुख संस्थापक। वह मार्क्सके प्रभावमें आकर समाजवादी हुआ था। उसने द्वितीय इंटरनेशनलके संगठनमें बहुत सक्रिय भाग लिया था। वह मार्क्स और एंगेल्सके सिद्धान्तोंका पालन करता था पर अंत तक वह जनवादके अपने पूँजीवादी विचारोंको दूर न कर सका और अवसरवादके विरुद्ध संघर्षमें प्रायः समझौतावादी दृष्टिकोण अपना लेता था। मार्क्स और एंगेल्सने अपने पत्रोंमें उसके ढुलमुल विचारोंकी बड़ी धज्जियाँ उड़ादी हैं।

पृष्ठ ६५; बर्न्सटाइन (१८४७-१६३२)—जर्मन सामाजिक-जनवादी नेता और अवसरवादियोंका अगुआ। मजदूर-आन्दोलनमें वह अर्थवादी दृष्टिकोणका प्रचार करता था और मार्क्सके सिद्धान्तोंका 'संशोधन' करना चाहता था। उसके विचारोंके विरुद्ध मार्क्स, एंगेल्स और लेनिनने निरंतर संघर्ष किया।

